प्रकाशक
(ब्रह्मचारी) देवप्रिय बी० ए०
प्रधान-मन्त्री, महाबोधि-सभा
सारनाथ (बनारस)

मुद्रक
महेन्द्रनाथ पाण्डेय
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

पूज्य

गुरुवर

के

श्री चरणों

में

भूमिका

बुद्ध धर्म के सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थों—सूत्र-पिटक, विनय-पिटक तथा अभिधर्म-पिटक में भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्यों के जो उपदेश संगृहीत हैं वह सभी परम्परा से बुद्ध-वचन माने जाते हैं। सूत्र-पिटक में साधारण बात चीत के ढंग पर दिए गये उपदेश हैं; विनय-पिटक में भिक्षुओं के नियम-उपनियम हैं और अभिधर्म-पिटक में है बुद्ध-दर्शन अपने पारिभाषिक शब्दों में।

पालि वा मागधी भाषा के यह ग्रन्थ अपनी अर्थ-कथाओं (=टीकाओं) सहित लगभग तीन महाभारत के बराबर हैं। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद की तीन संगीतियों (=भिक्षु सम्मेलनों) में इस वाङ्मय का संगायन हुआ और प्रथम शताब्दी में राजा वट्टगामणी के समय में सिंहल में लेख-बद्ध किया गया।

विद्वानों ने त्रिपिटक की भाषा और महाराज अशोक के शिलालेखों की भाषा पर तुलनात्मक विचार किया है। उनमें से कुछ का कहना है कि अशोक के शिलालेखों की मागधी में प्रथमा विभक्ति में 'ए' आता है और त्रिपिटक की पालि में 'ओ'। फिर अशोक के शिलालेखों में 'र' की जगह 'ल' का प्रयोग है। इसी प्रकार अशोक के शिलालेखों में 'श' का प्रयोग भी है, जब कि त्रिपिटक की पालि में केवल 'स' ही है। इन कुछ बातों को लेकर कोई कोई विद्वान् कहते हैं कि मागधी भाषा और चीज़ है, और पालि बिल्कुल और।

इस प्रकार उनकी दृष्टि में त्रिपिटक का बुद्ध-वचन होना सन्दिग्ध है।

लेकिन यदि वे इस बात पर विचार करें कि एक दो अक्षरों के प्रयोग का भेद तो पालि के सिंहल में जाकर लिखे जाने से वहाँ सिंहालियों की अपनी

भाषा से प्रभावित हो जाने के कारण भी हो सकता है और अशोक के पूर्वी शिलालेखों में और 'पालि' में कोई भेद नहीं, तो उन्हें 'पालि' को बुद्ध-वचन मानने में उतनी आपत्ति न होगी।

और हमारा तो कहना केवल इतना है कि जो भाषाएँ इस समय उपलब्ध हैं, उनमें पालि-त्रिपिटक की भाषा से बढ़ कर हमें बुद्ध के समीप ले जाने वाली दूसरी भाषा नहीं; जो ज्ञान त्रिपिटक में उपलब्ध है उस ज्ञान से बढ़कर हमें बुद्ध-ज्ञान के समीप ले जाने वाला दूसरा ज्ञान नहीं। जहाँ तक बुद्ध के व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, उसका सब से बड़ा परिचायक त्रिपिटक ही है।

प्रश्न हो सकता है कि त्रिपिटक तो बुद्ध के ५०० वर्ष बाद लिपिबद्ध किया गया। इतने अर्से में उसमें कुछ मिलावट की काफी सम्भावना है। हो सकता है, लेकिन फिर त्रिपिटक पर किस दूसरे साहित्य को तरजीह दें। यदि यह मान भी लिया जाये कि बुद्ध की अपनी शिक्षाओं के साथ कहीं कहीं त्रिपिटक में कुछ ऐसी दूसरी शिक्षायें भी दृष्टि-गोचर होती हैं जिनकी संगति बुद्ध की शिक्षाओं से आसानी से नहीं मिलाई जा सकती, तो भी हम बुद्ध की शिक्षाओं के लिए त्रिपिटक को छोड़ कर और किस दूसरे साहित्य की शरण लें?

भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से पालि वाङमय हमें बुद्ध के समीपतम ले जाता है। जितना समीप यह ले जाता है, उतना समीप कोई दूसरा साहित्य नहीं, और जहाँ यह नहीं ले जाता वहाँ किसी दूसरे साहित्य की गति नहीं।

पालि-वाङमय के उस हिस्से का जिसे हमने ऊपर त्रिपिटक या बुद्ध-वचन[1] कहा है विस्तार इस प्रकार है:—

---

[1] सिंहल, स्याम, बर्मा—इन तीनों देशों के अक्षरों में त्रिपिटक उपलब्ध है। सिंहल की अपेक्षा स्याम और बर्मा में सम्पूर्ण साहित्य आसानी

१. सुत्तपिटक, जो निम्नलिखित पांच निकायों में विभक्त हैः—
(१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) संयुत्तनिकाय,
(४) अंगुत्तरनिकाय, (५) खुद्दकनिकाय
खुद्दकनिकाय में १५ ग्रन्थ हैंः—
(१) खुद्दक पाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक,
(५) सुत्तनिपात, (६) विमान वत्थु, (७) पेत वत्थु, (८) थेर-गाथा,
(९) थेरी-गाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटि-
सम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस, (१५) चरियापिटक।
२. विनयपिटक, निम्नलिखित भागों में विभक्त हैः—
(१) महावग्ग, (२) चुल्ल वग्ग, (३) पाराजिक, (४) पाचि-
त्तिय, (५) परिवार।
३. अभिधम्म पिटक, में निम्नलिखित सात ग्रन्थ हैंः—
(१) धम्म संगनी, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गल-
पञ्ञति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

से मिल सकता है। बर्मा के मांडले नगर में तो सारा का सारा त्रिपिटक कई सौ शिला-लेखों पर अंकित है। रोमन-लिपि में पालि-टेक्स्ट सोसाइटी की ओर से छप चुका है। देवनागरी अक्षरों में शीघ्र छपेगा, ऐसी आशा और प्रयत्न है।

कई सज्जन प्रायः पूछते हैं कि एक संस्कृतज्ञ के लिये पालि कितनी कठिन होगी? कितने दिन में सीखी जा सकती है? इसका उत्तर यही है कि किसी भी भाषा का अभ्यास यूं तो अपने अध्यवसाय पर ही निर्भर है लेकिन सामान्यतया पालि में किसी भी संस्कृतज्ञ की गति शीघ्र ही हो सकती है। पालि संस्कृत से उतनी दूर नहीं है जितनी प्राकृत। प्राकृत में तो व्यञ्जन का स्वर भी हो जाता है लेकिन पालि में नहीं होता जैसे शकुन्तला का प्राकृत में सउन्दले हो जायगा लेकिन पालि में होगा केवल सकुन्तला।

त्रिपिटक का अध्ययन करने से पता चलता है कि अन्य धार्मिक ग्रन्थों की तरह 'वुद्ध-वचन' में कुछ विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर विद्यमान है। ठीक उन्हीं और वैसे ही प्रश्नों का उत्तर नहीं, जैसे प्रश्नों का उत्तर अन्य ग्रन्थों में देने का प्रयत्न किया गया है। क्योंकि कुछ प्रश्नों के बारे में वुद्ध कहते हैं:—"भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि मै तव तक भगवान् (वुद्ध) के उपदेश के अनुसार नहीं चलूँगा, जव तक कि भगवान् मुझे यह न वता दें कि संसार शाश्वत है, वा अशाश्वत, संसार सान्त है वा अनन्त; जीव वही है जो शरीर है वा जीव दूसरा है शरीर दूसरा है; मृत्यु के वाद तथागत रहते हैं; वा मृत्यु के वाद तथागत नहीं रहते—तो भिक्षुओ, यह वातें तो तथागत के द्वारा वे-कही ही रहेंगी और वह मनुष्य यूँ ही मर जायगा।" (पृ २२)।

इन वे-कही=अव्याकृत वातों के सम्वन्ध में हमें ध्यान रखना है कि (१) वुद्ध ने कुछ वातों को अव्याकृत रक्खा है और (२) बुद्ध ने कुछ ही वातों को अव्याकृत रक्खा है। इस लिए एक तो हम जिन वातों को वुद्ध ने वे-कही (=अव्याकृत) रक्खा है, उनके वारे में वुद्ध का मत जानने के लिए व्यर्थ हैरान न हों, दूसरे अपनी अपनी पसन्द की कुछ वातों, अपने पसन्द के कुछ मतों—जैसे ईश्वर और आत्मा आदि—को 'अव्याकृतों' की गिनती में रख कर, अव्याकृतों की संख्या न वढ़ायें।

संसार को किसने वनाया? कव वनाया? आदि प्रश्नों को वुद्ध ने नज़र-अन्दाज़ किया, उनका उत्तर नहीं दिया—सो अकारण ही नहीं। उनका कहना था—"भिक्षुओ, जैसे किसी आदमी को जहर में वुझा हुआ तीर लगा हो, उसके मित्र, रिश्तेदार उसे तीर निकालने वाले वैद्य के पास ले जावें। लेकिन वह कहे—'मैं तव तक यह तीर नहीं निकलवाऊँगा, जव तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है, वह क्षत्रिय है, ब्राह्मण है, वैश्य है, वा शूद्र है;' अथवा वह कहे—'मैं तव तक यह तीर नहीं निकलवाऊँगा, जव तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा

है, उसका अमुक नाम है, अमुक गोत्र है,' अथवा वह कहे—'मैं तब तक यह तीर नहीं निकलवाऊँगा, जब तक यह न जान लूं कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है, वह लम्बा है, छोटा है या मँझले कद का है,' तो हे भिक्षुओ उस आदमी को इन बातों का पता लगेगा ही नहीं, और वह यूँ ही मर जाएगा।" (पृ० २३)

जिस एक प्रश्न को बुद्ध ने उठाया और जिसका उत्तर दिया है, उसका सम्बन्ध न केवल सभी मनुष्यों से है, किन्तु सारे जीवों से, न केवल सभी देशों से है, बल्कि समस्त विश्व से, उसका सम्बन्ध अतीत से है, अनागत से है, वर्तमान से है। प्रश्न जितना सरल है, उससे अधिक व्यापक है। प्रश्न है, 'क्या हम दुःखी है?' बुद्ध का उत्तर है, 'हाँ'। क्या इस दुःख से छूट सकते हैं? बुद्ध का उत्तर है, 'हाँ'।

प्राचीन और वर्तमान काल में ऐसे मनुष्य रहे हैं और हैं जिनका मत है कि संसार में पैदा हुए हैं तो उसमें अधिक से अधिक मजा उड़ाने की कोशिश होनी चाहिये। यही एक मात्र बुद्धिमानी है। इस 'बुद्धिमानी' में और तो कोई दोष नहीं—दोष केवल इतना ही है कि अधिक से अधिक मज़ा उड़ाने को ही जीवन का परमार्थ बना लेने वालों के हिस्से में आता है अधिक से अधिक दुःख। प्रत्येक 'मजे' को वह दुगना करते हैं, इस आशा से कि उन्हें दुगना मजा आएगा। लेकिन होता क्या है? आज शराब का एक प्याला नाकाफी मालूम देता है, कल दूसरा परसों तीसरा। एक दिन आता है कि वह शराब को केवल इस लिए पीते हैं क्योंकि वह बिना पिये नहीं रह सकते। यही हाल संसार के सभी विषयों, सभी भोगों का है। थोड़े ही समय में विषयों के भोगने में तो कोई मज़ा नहीं रहता और न भोगने में होता है: दुःख, महान् दुःख। कैसी दयनीय दशा होती है तब भोगों के पीछे अन्धे हो कर भागने वालों की!!!

कुछ लोगों का कहना है कि संसार तो मिथ्या है, है ही नहीं—रस्सी में सर्प का भान है। इस मिथ्या-भान को छोड़ कर जो वास्तविक अस्तित्व

है—सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म है—उस ब्रह्म को साक्षात् करना ही एक-मात्र परमार्थ है। छः इन्द्रियों से जिस संसार का प्रतिक्षण अनुभव हो रहा है, उसे मिथ्या कहें तो कैसे? और इस 'मिथ्या' के पीछे किसी दूसरे सत्य को स्वीकार करें तो कैसे? किस आधार पर? 'श्रुति-प्रतिपादित' होने के अतिरिक्त क्या और भी कोई प्रमाण है? और श्रुति की प्रामाणिकता में क्या प्रमाण है?

संसार के भोगों को ही परम परमार्थ मानने वालों को यदि हम जड़वादी =भोगवादी कहें, तो सांसारिक वस्तुओं को सर्वथा मिथ्या मानने वालों को हम आत्मवादी या ब्रह्म-वादी कह सकते हैं। बुद्ध का अपना वाद क्या है?

त्रिपिटक में संसार का वर्णन दोनों दृष्टियों से है। साधारण आदमी की दृष्टि से भी और अर्हत्=जीवन्मुक्त की दृष्टि से भी। व्यावहारिक दृष्टि से भी और यथार्थ-दृष्टि से भी। साधारण आदमी की दृष्टि में संसार में फूल भी हैं काँटे भी हैं, दुःख भी है सुख भी है; लेकिन अर्हत् की दृष्टि से संसार में काँटे ही काँटे हैं, दुःख ही दुःख है।

खुजली के रोगी को खाज के खुजलाने में जो मजा आता है वह "न लड्डू खाने में, न पेड़े खाने में।" खाज का खुजलाना उसके लिए मजा है, सुख है और खाज का न खुजलाना—यूँ ही खाज होते देते रहना काँटे हैं, दुःख है। थोड़ी देर के लिए वह यह भूल जाता है कि स्वस्थ मनुष्य की कोई ऐसी भी अवस्था है जिसमें न खाज होती है, न खुजलाना।

खाज से पीड़ित आदमी के लिए खाज होना अवाञ्छनीय है, खुजलाना वाञ्छनीय। स्वस्थ आदमी दोनों से परहेज करता है। न उसे खाज होना प्रिय है, न खुजलाना। साधारण आदमी के लिए संसार के सुख वाञ्छनीय हैं, दुःख अवाञ्छनीय, अर्हत् दोनों को एक दृष्टि से देखता है। इन्द्रियां और मन की जिन चंचलताओं को हम 'मजा लेना' कहते हैं, शान्त-चित्त अर्हत् के लिए वह सभी चञ्चलतायें दुःख हैं।

त्रिपिटक में यह जो बुद्ध ने बार बार कहा है कि "भिक्षुओ, दुःख आर्य-सत्य क्या है ? पैदा होना दुःख है, बूढ़ा होना दुःख है, मरना दुःख है, शोक करना दुःख है, रोना पीटना दुःख है, पीड़ित होना दुःख है, परेशान होना दुःख है; थोड़े में कहना हो तो पांच उपादान स्कन्ध ही दुःख है," सो अर्हत् की ही दृष्टि से कहा है।

तब तो बुद्ध धर्म बिल्कुल निराशावाद ही निराशावाद है ? नहीं। निराशावाद कहता है: दुःख है, और दुःख से छुटकारा नहीं, लेकिन बुद्ध-धर्म एक योग्य चिकित्सक की भाँति कहता है: "दुःख है और दुःख से छुटकारा है।" जो धर्म बिना किसी परमात्मा में विश्वास के, बिना किसी परमात्मा के अवतार=पुत्र या पैगम्बर पर निर्भरता के, बिना किसी 'ईश्वरीय ग्रन्थ' को मानने की मजबूरी के, बिना किसी पुरोहित आदि की आवश्यकता के सभी दुःखों का अंत कर देने का रास्ता बताता है, उससे बढ़ कर आशावादी धर्म कौन सा होगा ?

हाँ तो इस दुःख-संसार का कारण क्या है ? ईश्वर ? बुद्ध कहते हैं "यह ईश्वर भी बड़ा खराब होगा जिसने (कुछ लोगों के मत में) ऐसा दुःखमय संसार बनाया।"

बुद्ध के मत में दुःख का कारण हम स्वयं हैं, हमारी अपनी अविद्या है, हमारी अपनी तृष्णा है। "भिक्षुओ, यह जो फिर फिर जन्म का कारण है, यह जो लोभ तथा राग से युक्त है, यह जो जहाँ कहीं मजा लेती है, यह जो तृष्णा है, जैसे काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा—यह तृष्णा ही दुःख के समुदय के बारे में आर्य-सत्य है (पृ० ११)

ऊपर कह आये हैं कि बुद्ध का जो विशेष उपदेश है, वह केवल 'दुःख और दुःख से मुक्ति' का उपदेश है। "दो ही चीजें भिक्षुओ, मैं सिखाता हूँ—दुःख और दुःख से मुक्ति"। (संयुत्त नि०)। प्रश्न होता है यह दुःखी होने वाला कौन है ? यह दुःख से मुक्त होने वाला कौन है ? आत्म-वादी दर्शनों से यदि यह प्रश्न पूछा जाए तो उनका तो सीधा उत्तर है 'जीव-आत्मा'।

लेकिन जब बुद्ध से पूछा जाता है कि 'आप कहते हैं 'मनुष्य दुःख भोगता है, मनुष्य मुक्त होता है, तो यह दुःख भोगने वाला, दुःख से मुक्त होने वाला कौन है ?" बुद्ध कहते हैं "तुम्हारा यह प्रश्न ही गलत है (न कल्लोऽयं पञ्हो) प्रश्न यूँ होना चाहिये कि क्या होने से दुःख होता है। और उसका उत्तर यह है कि तृष्णा होने से दुःख होता है।" यदि आप फिर यह जानना चाहें कि तृष्णा किसे होती है तो फिर बुद्ध का वही उत्तर है कि "तुम्हारा यह प्रश्न ही गलत है कि तृष्णा किसे होती है, प्रश्न यूँ होना चाहिये कि क्या होने से तृष्णा होती है" ? और इसका उत्तर यह है कि वेदना (=इन्द्रियों और विषयों के स्पर्श से अनुभूति) होने से तृष्णा होती है। इस प्रकार यह प्रत्ययों से उत्पत्ति का नियम (प्रतीत्य-समुत्पाद) सदा चलता रहता है। एक के होने से दूसरे की उत्पत्ति होती है, एक के निरोध से दूसरे का निरोध।

"अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम-रूप के होने से छः आयतन, छः आयतनों के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, मरना, शोक, रोना-पीटना, दुःख, मानसिक-चिन्ता तथा परेशानी होती है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुःख-स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। भिक्षुओ, इसे प्रतीत्य-समुत्पाद कहते है।

अविद्या के ही सम्पूर्ण विराग से, निरोध से संस्कारों का निरोध होता है। संस्कारों के निरोध से विज्ञान-निरोध, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप निरोध, नाम-रूप के निरोध से छः आयतनों का निरोध, छः आयतनों के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव-निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से बुढ़ापे, शोक, रोने-पीटने, दुक्ख, मानसिक-चिन्ता तथा परे-

शानी का निरोध होता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुःख स्कन्ध का निरोध होता है।" (पृ० ३०)

तब प्रश्न होता है कि यदि यथार्थ में कोई दुःख को भोगता है ही नहीं, तो फिर दुःख से मुक्ति का प्रयत्न व्यर्थ ? हाँ, सचमुच यदि हमें यह यथार्थ-दृष्टि उपलब्ध हो जाए कि 'जीव-आत्मा' नाम की कोई वस्तु नहीं, यह केवल हमारे अहङ्कार का एक सूक्ष्म प्रतिबिम्ब है, अवरोध है और हो जाए हमारे इस अहंकार का सर्वथा नाश, तो फिर हमें दुःख से मुक्त होने का प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं।

उस अवस्था में न दुःख रहेगा, न दुःख का भोगता; न प्रश्न की गुंजायश रहेगी न उसके उत्तर की।

क्या यह जो दुःख का एकान्तिक निरोध है, जिसे निर्वाण कहते हैं जीते जी प्राप्त किया जा सकता है ? हां, इसी 'छः फीट के शरीर' में प्राप्त किया जा सकता है। "भिक्षुओ, आदमी जीते जी निर्वाण को प्राप्त करता है, जो काल से सीमित नहीं, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि 'आओ और स्वयं देख लो;' जो ऊपर उठाने वाला है, जिसे प्रत्येक बुद्धिमान आदमी स्वयं प्रत्यक्ष कर सकता है।

"भिक्षु, जब शान्त-चित्त हो जाता है, जब (बन्धनों से) बिल्कुल मुक्त हो जाता है, तब उसको कुछ और करना बाकी नहीं रहता। जो कार्य्य वह करता है, उसमें कोई ऐसा नहीं होता, जिसके लिए उसे पश्चात्ताप हो।"

इस प्रकार का अर्हत्व-प्राप्त भिक्षु जब शरीर छोड़ता है, तब उसके पांच स्कन्धों का क्या होता है ? जिस कारण से उसका पुनर्जन्म होता, उस (तृष्णा-अविद्या) के नष्ट होने के कारण उसका पुनर्जन्म नहीं होता। ठीक उसी तरह जिस तरह बिजली का मनका (Switch) ऊपर उठा देने से बिजली की धारा (Electric current) रुक जाती है और बल्ब बुझ जाता है, वैसे ही तृष्णा की धारा का निरोध होने से यह जो जन्म-मरण रूपी दिया जलता रहता है, वह बुझ जाता है। हम बिजली के उदा-

हरण में यह नहीं पूछते कि जो रोशनी थी वह क्या हुई, क्योंकि हम जानते हैं कि रोशनी की उत्पत्ति का कारण तो विजली की धारा थी, वह बन्द हो गई तो अब और रोशनी कैसे उत्पन्न हो, उसी प्रकार जब अविद्या-तृष्णा की धारा बन्द हो गई, तो फिर अब जन्म-मरण का दीपक कहाँ से जले? उसका तो निर्वाण अवश्यम्भावी है।

तो बौद्ध पुनर्जन्म को मानते हैं? हाँ, व्यवहार-दृष्टि से अवश्य मानते हैं। "भिक्षुओ जैसे गो से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, घी से घी-मण्ड होता है। जिस समय में दूध होता है, उस समय न उसे दही कहते हैं, न मक्खन, न घी, न घी का मांडा। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय मेरा भूतकाल का जन्म था, उस समय मेरा भूतलाल का जन्म ही सत्य था, यह वर्तमान और भविष्यत का जन्म असत्य था। जब मेरा भविष्यतकाल का जन्म होगा, उस समय मेरा भविष्यतकाल का जन्म ही सत्य होगा, यह वर्तमान और भूत काल का जन्म असत्य होगा। यह जो अब मेरा वर्तमान में जन्म है; सो इस समय मेरा यही जन्म सत्य है, भूतकाल का और भविष्यतकाल का जन्म असत्य है।

"भिक्षुओ, यह लौकिक संज्ञा है। लौकिक निरुक्तियाँ हैं, लौकिक व्यवहार हैं, लौकिक प्रज्ञप्तियाँ हैं—इनका तथागत व्यवहार करते हैं, लेकिन इनमें फँसते नहीं।"

"जब आत्मा ही नहीं, तब पुनर्जन्म किसका?"—यह एक प्रश्न है जो प्रायः सभी पूछते हैं। इसका आंशिक उत्तर ऊपर दिया जा चुका है। अधिक स्पष्टता और सरलता से कहने के लिए यह कहा जा सकता है कि जो कार्य्य अबौद्ध दर्शन आत्मा से लेते हैं, वह सारा कार्य्य बौद्ध दर्शन में मन=चित्त=विज्ञान से ही ले लिया जाता है। आत्मा को जब शाश्वत, ध्रुव, अविपरिणामी मान लिया तो फिर उसके संस्कारों का वाहक होने की संगति ठीक नहीं बैठती, लेकिन मन=चित्त=विज्ञान तो परिवर्तन-

शील है, वह अच्छे कर्मों से अच्छा और बुरे कर्मों से बुरा हो सकता है। उसके संस्कारों का वाहक होने में कोई आपत्ति नहीं।

धम्मपद की पहली गाथा है :—

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा
ततोनं दुःखमन्वेति चक्कं व वहतो पदं।

सभी अवस्थाओं का पूर्व-गामी मन है, उनमें मन ही श्रेष्ठ है, वे मनोमय हैं। जब आदमी प्रदुष्ट मन से बोलता है वा कार्य्य करता है, तब दुःख उसके पीछे पीछे ऐसे हो लेता है जैसे (गाड़ी के) पहिये (बैल के) पैरों के पीछे पीछे।

तो भगवान् बुद्ध की शिक्षा के अनुसार इस प्रतिक्षण अनुभव होने वाले दुःख का अन्त किस प्रकार किया जा सकता है? यही विचारवान बनकर, सदाचारी बनकर, चित्त की एकाग्रता का संपादन करके।

धम्मपद की प्रसिद्ध गाथा है:—

सब्ब पापस्स अकरणं।
कुसलस्स उपसम्पदा॥
सचित्त परियोदपनं।
एतं बुद्धानसासन॥

अशुभ कर्मों का न करना, शुभ कर्मों का करना और चित्त को काबू में रखना—यही बुद्धों की शिक्षा है।

भिक्षु जिस समय दीक्षा ग्रहण करता है अपने आचार्य्य से कहता है कि सब दुखों का जो एकान्तिक-निरोध अथवा निर्वाण है, उसकी प्राप्ति के लिए यह काषाय वस्त्र देकर मुझे प्रव्रजित कर दें। निर्वाण या मोक्ष मनुष्य के बाहर की कोई ऐसी चीज नहीं है जिसके पीछे भाग कर यह उसे प्राप्त करता हो। मनुष्य जिस प्रकार स्वयं स्वस्थ होता है, स्वास्थ्य को प्राप्त

नहीं करता, उसी प्रकार मनुष्य निर्वृत होता है, निर्वाण को प्राप्त नहीं करता।

और यह निर्वाण, भिक्षु ही प्राप्त कर सके—ऐसा नियम नहीं है। कोई भी हो स्त्री हो या पुरुष, गृहस्थ हो या प्रव्रजित—जिसका राग शान्त हो गया हो, जिसका दोष शान्त हो गया हो है, जिसका मोह शान्त हो गया है —वह निर्वाण-प्राप्त है।

दु:ख और दु:ख का एकान्तिक-निरोध—यही है सभी बुद्धों की शिक्षा का सार।

× × ×

यह 'बुद्ध-वचन' नाम से त्रिपिटक में से जो छोटा सा संकलन किया गया है, इस संकलन का श्रेय है हमारे वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, पूज्य महास्थविर ज्ञानतिलोक को। आप जर्मन-देशीय हैं और लगभग पिछले ४० वर्ष से सिंहल (लंका) में हैं। आजकल आप वहाँ एक द्वीप-आश्रम (Island Hermitage) में, सिंहल के दक्षिणी हिस्से में रहते हैं। एक दो वर्ष आप जापान में प्रोफेसर रहे और लड़ाई के दिनों में काफ़ी दिन अंग्रेजी सरकार के जेल-खाने में। जहाँ कहीं पालि के पाण्डित्य की चर्चा होती है, आपका नाम अति श्रद्धा से लिया जाता है।

कुछ वर्ष हुए आपने पालि त्रिपिटक के उद्धरणों का यह संकलन, जो कि बाद में जर्मन और अंग्रेजी में अनूदित होकर छपा, किया था। मुझे यह संकलन बहुत जँचा, क्योंकि यह बौद्धधर्म के परिचितों और अपरिचितों दोनों के लिए समान रूप से काम की चीज है। इसमें त्रिपिटक के उद्धरणों को इस तरतीब से सजाया गया है कि कोई एक बात दो बार नहीं आती और सब मिलकर एक क्रम-बद्ध शास्त्र का रूप धारण कर लेता है। मेरी अपनी राय है कि बुद्ध-धर्म की सारी रूप-रेखा का समावेश इस छोटे से संकलन में हो जाता है।

कई वर्ष हुए, मैंने इस संकलन के अंग्रेज़ी रूपान्तर को पढ़ा। तभी मेरी इच्छा हुई, इसे हिन्दी में छपा देखने की। 'किसी न किसी को इसे

हिन्दी रूपान्तर देना ही चाहिये' सोच मैंने पहले उन सब पालि उद्धरणों को नागरी अक्षरों में लिखा, जिनसे महास्थविर ज्ञानातिलोक ने जर्मन और अंग्रेजी में अनुवाद किया था। फिर मूल पालि से उनका हिन्दी अनुवाद किया। जर्मन से मैं अनुवाद कर न सकता था, और एक ऐसे संग्रह का जिसका मूल पालि में हो, अंग्रेजी से अनुवाद करते लज्जा आती थी। हमारे अपने देश की भाषा हो पालि, और हम उसका हिन्दी रूपान्तर देखें अंग्रेजी के माध्यम द्वारा!

अनुवाद में मैंने जल्दी नहीं की; जल्दी कर भी न सकता था। पुरानी बात को आज की भाषा में कहना सरल नहीं जान पड़ा। फिर भी मैंने अपनी ओर से कोशिश की कि मूल-पालि से भी चिपटा रहूँ ताकि केवल आजकल की भाषा की धुन में मूल-पालि के भाव से बिल्कुल दूर न जा पड़ूँ और आजकल की भाषा से भी चिपटा रहूँ, जिसमें अनुवाद बिल्कुल 'मक्खी पर मक्खी मारना' न हो जाय।

अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ, इसका मैं स्वयं अच्छा निर्णायक नहीं समझा जा सकता।

अनुवाद कर चुकने पर भाई जगदीश काश्यप जी के साथ सारा अनुवाद दुहरा लिया गया। उनकी सलाहों के लिए उन्हें धन्यवाद देते डर लगता है। अपने आपको कोई कैसे धन्यवाद दे?

पाठक कहीं कहीं कोष्ठक में एक दो शब्द देखेंगे, वे शब्द कोष्ठक में इसलिए जोड़ दिये गये हैं कि उनसे विषय स्पष्ट हो जाय और वे शब्द मूल-पालि के भी न समझे जायें।

त्रिपिटक में से जिस जिस स्थल से मूल-पालि के उद्धरण चुने गये हैं उन सब का संकेत उद्धरणों के आरम्भ में किनारों पर दे दिया गया है:—

म=मज्झिम निकाय
स=संयुत्त निकाय
दी=दीर्घ निकाय

ध=धम्मपद
अ=अंगुत्तर निकाय
इ=इतिवुत्तक
उ=उदान

जिन शब्दों पर नोट देना आवश्यक प्रतीत हुआ है, उन्हें मोटे टाइप में छाप दिया गया है और पुस्तक के अन्त में व्याख्या स्वरूप दो शब्द लिख दिए गये हैं।

अलोपी-बाग
दारागंज, प्रयाग
ति० २७-९-३७

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है।

बुद्ध-वचन

भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ने वाराणसी म. (=बनारस) के ऋषिपतन मृगदाव में अनुत्तर धर्मचक्र चलाया है। इस से पहले ऐसा धर्मचक्र लोक में न किसी श्रमण ने, न किसी ब्राह्मण ने, न किसी देवता ने, न किसी मार ने और न किसी ब्रह्मा ही ने चलाया। कौनसा धर्मचक्र? यह जो चार आर्य-सत्यों का कहना है, यह जो चार आर्य-सत्यों का उपदेश करना है, यह जो चार आर्य-सत्यों का प्रकाशित करना है, यह जो चार आर्य-सत्यों का स्थापित करना है, यह जो चार आर्य-सत्यों का विस्तार करना है, यह जो चार आर्य-सत्यों का विभाजन करना है, और यह जो चार आर्य-सत्यों को उघाड़ कर दिखा देना है। कौन से चार आर्य-सत्यों को?

(१) दुःख आर्य-सत्य को, (२) दुःख समुदय आर्य-सत्य को,
(३) दुःख निरोध आर्य-सत्य को (४) दुःख निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग आर्य-सत्य को।

भिक्षुओ! जब तक मुझे इन चार आर्य-सत्यों का यूं तेहरा करके बारह प्रकार से यथार्थ ज्ञान-दर्शन स्पष्ट नहीं हो गया, तब तक मैंने यह दावा नहीं किया कि मैंने देव और मार-सहित लोक में, तथा श्रमण-ब्राह्मण और देव-मनुष्यों से युक्त प्रजा में सब से बढ़ कर सम्यक् ज्ञान को पा लिया; लेकिन जब मुझे इन चार आर्य-सत्यों का यूं तेहरा करके बारह प्रकार से यथार्थ ज्ञान-दर्शन स्पष्ट हो गया, तो मैंने दावा किया कि मैंने देव और मार सहित लोक में, तथा श्रमण-ब्राह्मण और देव-मनुष्यों से युक्त प्रजा में सब से बढ़ कर सम्यक् ज्ञान को पा लिया।

म. २६ मैं इस धर्म को जान गया, यह गम्भीर है, दुष्करता से दिखाई देने वाला है, सूक्ष्मता से समझ में आने वाला है, शान्त है, प्रणीत है, (केवल) तर्क से अगम्य है, निपुण है और पंडित-जनों द्वारा ही जाना जा सकता है।

लोग आसक्ति में पड़े हैं, आसक्ति में रत हैं, आसक्ति में प्रसन्न हैं। इन आसक्ति में पड़े, आसक्ति में रत, आसक्ति में प्रसन्न लोगों के लिये यह बहुत कठिन है कि वह कार्य-कारण सम्बन्धी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम को समझ सकें और उनके लिए यह भी बहुत कठिन है कि वह सभी संस्कारों के शमन, सभी चित्त-मलों के त्याग, तृष्णा के क्षय, विराग-स्वरूप, निरोध-स्वरूप निर्वाण को प्राप्त कर सकें।

ऐसे भी प्राणी हैं जिन के चित्त पर थोड़ा ही मैल है; वे यदि धर्मोपदेश न सुनेंगे तो विनाश को प्राप्त होंगे।

वे लोग धर्म के समझने वाले होंगे।

(१)

दुःख-आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! दुःख-आर्य-सत्य क्या है ? पैदा होना दुःख है, बूढ़ा होना दी. २२
दुःख है, मरना दुःख है, शोक करना दुःख है, रोना पीटना दुःख है, पीड़ित होना दुःख है, चिन्तित होना दुःख है, परेशान होना दुःख है, इच्छा की पूर्ति न होना दुःख है; थोड़े में कहना हो तो पाँच उपादान स्कन्ध ही दुःख हैं।

भिक्षुओ ! पैदा होना किसे कहते हैं ? यह जो जिस किसी प्राणी का, जिस किसी योनि में जन्म लेना है, पैदा होना है, उतरना है, उत्पन्न होना है, स्कन्धों का प्रादुर्भाव होना है, आयतनों की उपलब्धि है—इसे ही भिक्षुओ ! पैदा होना कहते हैं।

भिक्षुओ ! बूढ़ा होना किसे कहते हैं ? यह जो जिस किसी प्राणी का, जिस किसी योनि में बुढ़ापे को प्राप्त होना है, दाँत टूटना है, बाल पकना है, चमड़ी में झुर्री पड़ना है, आयु का खातमा है, इन्द्रियों का दुर्बल होना है—इसे ही भिक्षुओ ! बूढ़ा होना कहते हैं।

भिक्षुओ ! मरना किसे कहते हैं ? यह जो जिस किसी प्राणी का, जिस किसी योनि से गिर पड़ना=पतित होना है, पृथक् होना है, अन्तर्धान होना है, मृत्यु को प्राप्त होना है, काल कर जाना है, स्कन्धों का अलहदा अलहदा हो जाना है, शरीर का फेंक दिया जाना है—इसे ही भिक्षुओ, मरना कहते हैं।

भिक्षुओ ! शोक किसे कहते हैं ? यह जो जिस किसी विपत्ति से युक्त, जिस किसी पीड़ा से पीड़ित मनुष्य का सोचना है, चिन्ता है, अन्दरूनी शोक है—इसे ही भिक्षुओ, शोक कहते हैं।

भिक्षुओ! रोना-पीटना किसे कहते हैं? यह जो जिस किसी विपत्ति से युक्त, जिस किसी पीड़ा से पीड़ित मनुष्य का रोना-पीटना है, चिल्लाना है—इसे ही भिक्षुओ! रोना-पीटना कहते हैं।

भिक्षुओ! पीड़ित होना किसे कहते हैं? यह जो शारीरिक दुःख है, शारीरिक पीड़ा है, शरीर सम्बन्धी क्लेश है, बुरी शारीरिक अनुभूति है—इसे ही भिक्षुओ! पीड़ित होना कहते हैं।

भिक्षुओ! चिन्तित होना किसे कहते हैं? यह जो मानसिक दुःख है, मानसिक पीड़ा है, मन सम्बन्धी क्लेश है, बुरी मानसिक अनुभूति है—इसे ही भिक्षुओ! चिन्तित होना कहते हैं।

भिक्षुओ! परेशान होना किसे कहते हैं? यह जो जिस किसी विपत्ति से युक्त, जिस किसी दुःख से दुखित मनुष्य का हैरान होना है, परेशान होना है—इसे ही भिक्षुओ! परेशान होना कहते हैं।

भिक्षुओ! इच्छा की पूर्ति न होना दुःख कैसे है? भिक्षुओ, पैदा होने वालों की इच्छा होती है कि हम पैदा न होते, हम पैदा न हों; बूढ़ों की इच्छा होती है कि हम बूढ़े न होते, हम बूढ़े न हों; रोगियों की इच्छा होती है कि हम रोगी न होते, हम रोगी न हों; मरने वालों की इच्छा होती है कि हम न मरते, हम न मरें; शोकाकुलों की इच्छा होती है कि हम शोकग्रस्त न होते, हम शोकग्रस्त न हों, रोने-पीटने वालों की इच्छा होती है कि हमें रोना-पीटना न होता, हमें रोना-पीटना न हो; पीड़ितो की इच्छा होती है कि हमें शारीरिक-क्लेश न होता, हमें शारीरिक क्लेश न हो; चिन्ताग्रस्तों की इच्छा होती है कि हम चिन्तित न होते, हम चिन्तित न हों; परेशान होने वालों की इच्छा होती है कि हम परेशान न होते, हम परेशान न हों; लेकिन यह इच्छा से (तो) नहीं होता। इस प्रकार इच्छा की पूर्ति न होना दुःख है।

और भिक्षुओ! थोड़े में कौन से पाँच उपादान स्कन्ध दुःख हैं? यह रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना-उपादान-स्कन्ध, संज्ञा-उपादान-स्कन्ध, संस्कार-उपादान-स्कन्ध, विज्ञान-उपादान-स्कन्ध।

भिक्षुओ! जितना भी रूप है—चाहे भूत काल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्यत का; चाहे अपने अन्दर का हो, अथवा बाहर का; चाहे स्थूल हो, अथवा सूक्ष्म; चाहे बुरा हो, अथवा भला; चाहे दूर हो अथवा समीप—वह सब रूप "रूप-उपादान-स्कन्ध" के अन्तर्गत है; उसी प्रकार जितनी भी वेदनायें हैं, वह सब 'वेदना-उपादान-स्कन्ध' के अन्तर्गत हैं; जितनी भी संज्ञा हैं, वह सब 'संज्ञा-उपादान-स्कन्ध' के अन्तर्गत हैं; जितने भी संस्कार है वे सब 'संस्कार-उपादान-स्कन्ध' के अन्तर्गत हैं; और जितना विज्ञान है, यह सब 'विज्ञान-उपादान-स्कन्ध' के अन्तर्गत है।

भिक्षुओ! रूप-उपादान-स्कन्ध किसे कहते हैं? चारों महाभूतों को, तथा चारों महाभूतों के कारण जो रूप उत्पन्न होता है, उसे रूप-उपादान-स्कन्ध कहते हैं।

भिक्षुओ! चारों महाभूत कौन से हैं? पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु, तथा वायु-धातु।

भिक्षुओ! पृथ्वी-धातु किसे कहते है? पृथ्वी-धातु दो प्रकार की हो सकती है:—(१) अन्दरूनी पृथ्वी-धातु तथा बाहरी पृथ्वी-धातु। अन्दरूनी पृथ्वी-धातु किसे कहते हैं? यह जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ठोस है, खुरदरा है जैसे:—सिर के बाल, बदन के रुएँ, नाखून, दांत, चमडी, मांस, रगें, हड्डी, हड्डी (के भीतर की) मज्जा, कलेजा, यकृत, क्लोमक, तिल्ली, फुफ्फुस, आंत, पतली-आंत, पेट में की (थैली), पाखाना......और भी जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ठोस है, खुरदरा है, उसे अन्दरूनी पृथ्वी-धातु कहते हैं। और यह जो अन्दरूनी पृथ्वी-धातु है तथा यह जो बाहरी पृथ्वी-धातु है—यह सब पृथ्वी-धातु ही है।

भिक्षुओ! जल-धातु किसे कहते हैं? जल-धातु दो प्रकार की हो सकती है:—अन्दरूनी जल-धातु और बाहरी जल-धातु। अन्दरूनी जल-धातु किसे कहते हैं? यह जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जलीय है, बहने वाला है, तरल पदार्थ है जैसे:—पित्त, कफ, पीप, लोहू, पसीना, मेद (=चर),

आँसू, चर्बी, थूक, सीढ, कोहनी आदि जोड़ों में स्थित तरल पदार्थ तथा मूत्र—और भी जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जलीय है, बहने वाला है, तरल पदार्थ है, उसे अन्दरूनी जल-धातु कहते हैं। यह जो अन्दरूनी जल-धातु है तथा यह जो बाहरी जल-धातु है—यह सब जल-धातु ही है।

भिक्षुओ! अग्नि-धातु किसे कहते है? अग्नि-धातु दो प्रकार की हो सकती है:—अन्दरूनी अग्नि-धातु तथा बाहरी अग्नि-धातु। अन्दरूनी अग्नि-धातु किसे कहते हैं? यह जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अग्निमय है, गर्मी है, जैसे:—जिससे तपता है, जिससे पचता है, जिससे जलता है, जिससे खाया पिया भली प्रकार हजम होता है..... और भी जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अग्नि-रूप है, गर्मी है, उसे अग्नि-धातु कहते हैं। यह जो अन्दरूनी अग्नि-धातु है तथा यह जो बाहरी अग्नि-धातु है—यह सब अग्नि-धातु ही है।

भिक्षुओ! वायु-धातु किसे कहते हैं? वायु-धातु दो प्रकार की हो सकती है:—अन्दरूनी वायु-धातु तथा बाहरी वायु-धातु। अन्दरूनी वायु-धातु किसे कहते हैं? यह जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर वायु-रूप है, वायु है जैसे:—ऊपर जाने वाली वायु, नीचे जाने वाली वायु, पेट में रहने वाली वायु, कोष्ठ (=कोठे) में रहने वाली वायु, अङ्ग अङ्ग में घूमने वाली वायु, आश्वास-प्रश्वास—और भी जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर वायु-रूप है, वायु है, उसे वायु-धातु कहते हैं। यह जो अन्दरूनी वायु-धातु है तथा यह जो बाहरी वायु-धातु है—यह सब वायु-धातु ही है।

भिक्षुओ! जिस प्रकार काठ, वल्ली, तृण तथा मिट्टी मिलकर 'आकाश' (=खला) को घेर लेते हैं और उसे घर कहते हैं, इसी प्रकार हड्डी, रगें, माँस, तथा चर्म मिलकर आकाश को घेर लेते हैं और उसे 'रूप' कहते है।

भिक्षुओ! अपनी आँख ठीक हो, लेकिन बाहर की वस्तुएँ सामने न हों और न हो उनका संयोग, तो उससे उत्पन्न हो सकने वाले विज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता। भिक्षुओ! अपनी आँख ठीक हो, बाहर की वस्तुएँ

सामने हों, लेकिन उनका संयोग न हो; तो भी उससे उत्पन्न हो सकने वाले विज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता।

भिक्षुओ! जब अपनी आँख ठीक हो, बाहर की वस्तुएँ (=रूप) सामने हों, और हो उनका संयोग, तभी उससे उत्पन्न हो सकने वाले विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है।

इस लिए विज्ञान हेतु (=प्रत्यय) से पैदा होता है; बिना हेतु के विज्ञान की उत्पत्ति नहीं।

आँख और रूप से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह चक्षु-विज्ञान कहलाता है। कान और शब्द से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह श्रोत-विज्ञान कहलाता है। नाक और गन्ध से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है वह घ्राण-विज्ञान कहलाता है। काय (=स्पर्शेन्द्रिय) और स्पृशतव्य से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह काय-विज्ञान कहलाता है। मन तथा धर्म (=मन-इन्द्रिय के विषय) से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह मनोविज्ञान कहलाता है।

उस विज्ञान में का जो रूप है, वह रूप-उपादान-स्कन्ध के अन्तर्गत है; उस विज्ञान में की जो वेदना है, वह वेदना-उपादान-स्कन्ध के अन्तर्गत है; उस विज्ञान में की जो संज्ञा है, वह संज्ञा-उपादान-स्कन्ध के अन्तर्गत है; उस विज्ञान में के जो संस्कार हैं, वह संस्कार-उपादान स्कन्ध के अन्तर्गत हैं, जो उस विज्ञान (=चित्त) में का विज्ञान (=मात्र) है, वह विज्ञान-उपादान स्कन्ध के अन्तर्गत है। म. २८

भिक्षुओ! यदि कोई कहे कि बिना रूप के, बिना वेदना के, बिना संज्ञा के, बिना संस्कार के, विज्ञान=चित्त=मन की उत्पत्ति, स्थिति, विनाश, उत्पन्न होना, वृद्धि तथा विपुलता को प्राप्त होना हो सकता है, तो यह असम्भव है।

भिक्षुओ! सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी संस्कार दुःख हैं, सभी धर्म अनात्म हैं। (क्योंकि) रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, स. २१.२

संस्कार अनित्य हैं तथा विज्ञान अनित्य है। जो अनित्य है, सो दुःख है। जो दुःख है, सो अनात्म है। जो अनात्म है, वह न मेरा है, न वह मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है।

स. २१.५ इस लिए भिक्षुओ! इसे अच्छी प्रकार समझ कर यथार्थ रूप से यूं जानना चाहिए कि यह जितना भी रूप है, जितनी भी वेदना है, जितनी भी संज्ञा है, जितने भी संस्कार हैं, जितना भी विज्ञान है,—चाहे भूतकाल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्यत का, चाहे अपने अन्दर का हो, अथवा वाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे वुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप—वह "न मेरा है, न वह मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है।"

स. २१.६ भिक्षुओ! जैसे इस गङ्गा नदी में वहुत सी झाग (=फेन) चली आ रही हो। उस झाग को कोई आँख वाला आदमी देखे, उस पर सोचे और विचार करे और सोचने तथा विचार करने से उसे वह झाग विल्कुल रिक्त, तुच्छ तथा सारहीन मालूम दे—भिक्षुओ! फेन में क्या सार हो सकता है? उसी प्रकार भिक्षुओ, जितना भी रूप है—चाहे भूत काल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्यत का; चाहे अपने अन्दर का हो, चाहे वाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म; चाहे वुरा हो अथवा भला; चाहे दूर हो अथवा समीप—उसे भिक्षु देखता है, सोचता है, उस पर अच्छी तरह विचार करता है। उसे देखने, सोचने, उस पर अच्छी तरह विचार करने से उसे वह रूप विल्कुल रिक्त, तुच्छ तथा सारहीन दिखाई देगा। भिक्षुओ, रूप में क्या सार हो सकता है?

ध. ११ इस प्रकार यह आग लग रही है; और तुम्हें आनन्द तथा हँसना सूझता है।

अ. क्या तुम कभी किसी ऐसे स्त्री या पुरुप को नहीं देखते, जो अस्सी, नब्बे, या सौ वर्प का हो, जो बूढ़ा हो गया हो, जिसकी कमर शहतीर की तरह झुक गई हो, जो लाठी लिए चलता हो, जो काँपता हो, जो दुःखी हो, जिसकी जवानी चली गई हो, जिसके दाँत गिर गए हों, जिसके वाल पक गए हों,

जिसका सिर गंजा हो गया हो, जिसके मुँह पर झुरियाँ तथा शरीर पर धब्बे पड़ गए हों? यदि देखते हो, तो क्या तुम्हारे मन में यह कभी नहीं होता कि मुझे भी बुढ़ापा आ सकता है? मैं भी अभी बुढ़ेपन का शिकार हो सकता हूँ?

क्या तुम कभी किसी ऐसे स्त्री या पुरुष को नहीं देखते, जो पीड़ित हो, दुःखी हो, अत्यन्त रोगी हो, अपने पेशाब-पाखाने में गिरा हो, जिसे दूसरे उठाकर बिठाते हों, दूसरे लिटाते हों? यदि देखते हो, तो क्या तुम्हारे मन में यह कभी नहीं होता कि मैं भी बीमार पड़ सकता हूँ? मैं भी अभी बीमारी का शिकार हो सकता हूँ।

क्या तुम कभी किसी ऐसे स्त्री या पुरुष को नहीं देखते, जिसे मरे एक दिन हुआ हो, दो दिन हुए हों, अथवा तीन दिन हो गए हों, जिसका बदन सूज गया हो, नीला पड़ गया हो, जिसके बदन में पीप पड़ गई हो? यदि देखते हो, तो क्या तुम्हारे मन में यह कभी नहीं होता कि मैं भी मरने वाला हूँ? मैं भी मृत्यु का शिकार हो सकता हूँ?

भिक्षुओ! संसार अनादि है। अविद्या और तृष्णा से संचालित, भटकते फिरते प्राणियों के आरम्भ (=पूर्वकोटि) का पता नहीं चलता। स. १४

तो भिक्षुओ, क्या समझते हो, यह जो चारों महासमुद्रों में पानी है, यह अधिक है अथवा यह जो इस संसार में बार बार जन्म लेने वालों ने प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग के कारण रो-पीट कर आँसू बहाये हैं?

भिक्षुओ, चिर-काल तक माता के मरने का दुःख सहा है, पिता के मरने का दुःख सहा है, पुत्र के मरने का दुःख सहा है, लड़की के मरने का दुःख सहा है, रिश्तेदारों के मरने का दुःख सहा है, सम्पत्ति के विनाश का दुःख सहा है, रोगी होने का दुःख सहा है; उन माता के मरने का दुःख सहने वालों ने, पिता के मरने का दुःख सहने वालों ने, पुत्र के मरने का दुःख सहने वालों ने, लड़की के मरने का दुःख सहने वालों ने, रिश्तेदारों के मरने का दुःख

सहने वालों ने, सम्पत्ति के विनाश का दुःख सहने वालों ने, रोगी होने का दुःख सहने वालों ने संसार में बार बार जन्म लेकर प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग के कारण जो रो-पीटकर आँसू बहाए हैं, वे ही अधिक हैं; इन चारों महासमुद्रों का जल नहीं।

स. १४-२ तो भिक्षुओ, क्या समझते हो, यह जो चारों महासमुद्रों में पानी है, यह अधिक है अथवा यह जो संसार में बार बार जन्म लेकर सीस कटाने पर रक्त बहा है?

भिक्षुओ! 'ग्राम घातक चोर है' करके सिर काटने पर, 'डाका डालने वाले चोर हैं' करके सिर काटने पर, 'पराई स्त्री के पास जाने वाले चोर हैं' करके सिर काटने पर चिर काल तक जो रक्त बहा है, वही अधिक है; इन चारों महासमुद्रों का जल नहीं।

यह किस लिए? भिक्षुओ, संसार अनादि है। अविद्या और तृष्णा से संचालित, भटकते फिरते आदमियों के आरम्भ (पूर्व कोटि) का पता नहीं चलता।

इस प्रकार भिक्षुओ, दीर्घ काल तक दुःख का अनुभव किया है, तीव्र दुःख का अनुभव किया है; बड़ी बड़ी हानियाँ सही है; श्मशान भूमि को पाट दिया है। अब तो भिक्षुओ, सभी संस्कारों से निर्वेद प्राप्त करो, वैराग्य प्राप्त करो, मुक्ती प्राप्त करो।

(२)

दुःख समुदय आर्य-सत्य

भिक्षुओ, दुःख के समुदय के बारे में आर्य-सत्य क्या है?

भिक्षुओ, यह जो फिर फिर जन्म का कारण है, यह जो लोभ तथा राग से युक्त है, यह जो जहाँ कहीं मजा लेती है, यह जो तृष्णा है, जैसे काम-तृष्णा, भव-तृष्णा तथा विभव-तृष्णा—यह तृष्णा ही दुःख के समुदय के बारे में आर्य-सत्य है।

तो भिक्षुओ, यह तृष्णा कैसे पैदा होती हुई पैदा होती है और कैसे अपना घर बनाती हुई घर बनाती है? दी. २

संसार में जो प्रिय-कर है; संसार में जिसमें मजा है, वहीं यह तृष्णा पैदा होती है, और वहीं यह अपना घर बनाती है।

संसार में प्रिय-कर क्या है, संसार में मजा किस म है? संसार में चक्षु प्रिय-कर है, संसार में चक्षु में मजा है। संसार में रूप प्रिय-कर है, संसार में रूप में मजा है। संसार में श्रोत्र प्रिय-कर है, संसार में श्रोत्र में मजा है। संसार में शब्द प्रिय-कर है, संसार में शब्द में मजा है। संसार में घ्राण प्रिय-कर है, संसार में घ्राण में मजा है। संसार में गंध प्रिय-कर है, संसार में गन्ध में मजा है। संसार में जिह्वा प्रिय-कर है, संसार में जिह्वा में मजा है। संसार में रस प्रिय-कर है, संसार में रस में मजा है। संसार में काय प्रिय-कर है संसार में काय में मजा है। संसार में स्पर्श प्रिय-कर है, संसार में स्पर्श में मजा है। संसार में मन प्रिय-कर है, संसार में मन में मजा है। संसार में मन के विषय (=धर्म) प्रिय-कर हैं, संसार में मन के विषयों में मजा है—इन्हीं में यह तृष्णा पैदा होती है और इन्हीं में अपना घर बनाती है।

संसार में चक्षु-विज्ञान प्रिय-कर है, संसार में चक्षु-विज्ञान में मजा है। संसार में श्रोत्र-विज्ञान प्रिय-कर है, संसार में श्रोत्र-विज्ञान में मजा है। संसार में घ्राण-विज्ञान प्रिय-कर है, संसार में घ्राण-विज्ञान में मजा है। संसार में जिह्वा-विज्ञान प्रिय-कर है, संसार में जिह्वा-विज्ञान में मजा है। संसार में काय-विज्ञान प्रिय-कर है, संसार में काय-विज्ञान में मजा है। संसार में मनो-विज्ञान प्रिय-कर है, संसार में मनो-विज्ञान में मजा है—इन्हीं में यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्हीं में अपना घर बनाती है।

संसार में चक्षु स्पर्श प्रिय-कर है, संसार में चक्षु-स्पर्श में मजा है। संसार में श्रोत्र-स्पर्श प्रिय-कर है, संसार में श्रोत्र-स्पर्श में मजा है। संसार में घ्राण-स्पर्श प्रिय-कर है, संसार में घ्राण-स्पर्श में मजा है। संसार में जिह्वा-स्पर्श प्रिय-कर है, संसार में जिह्वा-स्पर्श में मजा है। संसार में काय-स्पर्श प्रिय-कर है संसार में काय-स्पर्श में मजा है। संसार में मन-स्पर्श प्रिय-कर है, संसार में मन-स्पर्श में मजा है—इन्हीं में यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्हीं में यह अपना घर बनाती है।

संसार में चक्षु-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना (=अनुभूति) प्रिय-कर है, संसार में चक्षु-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना (=अनुभूति) में मजा है। संसार में श्रोत्र-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, संसार में श्रोत्र-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना में मजा है। संसार में घ्राण-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, संसार में घ्राण-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना में मजा है। संसार में जिह्वा-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, संसार में जिह्वा-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना में मजा है। संसार में काय-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, संसार में काय-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना में मजा है। संसार में मन-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, संसार में मन-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना में मजा है—इन्हीं में यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्हीं में यह अपना घर बनाती है।

रूप-सञ्ञा, (=संज्ञा) शब्द-सञ्ञा, गन्ध-सञ्ञा, रस-सञ्ञा, स्पर्श-सञ्ञा तथा धर्म (=मन के विषय)-सञ्ञा—यह सब प्रिय-कर हैं, इन सब में मजा है; इन्ही में यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्ही में यह अपना घर बनाती है।

रूप-संचेतना, शब्द-संचेतना, गन्ध-संचेतना, रस-संचेतना, स्पर्श-संचेतना तथा धर्म (=मन के विषय)-संचेतना—यह सब प्रिय-कर हैं, इन सब में मजा है; इन्हीं में यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्हीं में यह अपना घर बनाती है।

रूप-वितर्क, शब्द-वितर्क, गन्ध-वितर्क, रस-वितर्क, स्पर्श-वितर्क तथा धर्म (=मन के विषय)-वितर्क—यह सब प्रिय-कर है, इन सब में मजा है; इन्हीं में यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्हीं में यह अपना घर बनाती है।

रूप-विचार, शब्द-विचार, गन्ध-विचार, रस-विचार, स्पर्श-विचार, तथा धर्म (=मन के विषय)-विचार—यह सब प्रिय-कर हैं, इन सब में मजा है, इन्हीं में यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्हो में यह अपना घर बनाती है।

मनुष्य अपनी आँख से रूप देखता है। प्रिय-कर लगे तो उसमें आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर हो, तो उससे दूर भागता है। कान से शब्द सुनता है, प्रिय-कर लगे तो उसमें आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। घ्राण से गन्ध सूँघता है, प्रियकर लगे तो उसमें आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। जिह्वा से रस चखता है, प्रिय-कर लगे तो उसमें आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। काय-से स्पर्श करता है, प्रिय-कर लगे तो उसमें आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। मन से मन के विषय (=धर्म) का चिन्तन करता है, प्रिय-कर लगे तो उसमें आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। म. ३८

इस प्रकार आसक्त होने वाला तथा दूर भागने वाला, जिस दुःख, सुख वा अदुःख-असुख, किसी भी प्रकार की वेदना=अनुभूति का अनुभव करता

है, वह उस वेदना में आनन्द लेता है, प्रशंसा करता है, उसे अपनाता है। वेदना को जो अपना बनाना है, वही उसमें राग उत्पन्न होना है। वेदना में जो राग है, वही उपादान है। जहाँ उपादान है, वहाँ भव है। जहाँ भव है, वहाँ पैदा होना है। जहाँ पैदा होना है, वहाँ बूढ़ा-होना, मरना, शोक करना, रोना-पीटना, पीड़ित-होना, चिन्तित होना, परेशान होना—सब है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुःख का समुदय होता है।

म. १३ भिक्षुओ, कामना ही के कारण, कामना ही की वजह से, कामना ही के हेतु से राजा राजाओं से झगड़ते हैं, क्षत्रिय क्षत्रियों से झगड़ते हैं, ब्राह्मण ब्राह्मणों से झगड़ते हैं, वैश्य (=गृहपति) वैश्यों से झगड़ते हैं, माता पुत्र से, पुत्र माता से झगड़ता है; पिता पुत्र से, पुत्र पिता से झगड़ता है; भाई भाई से, भाई बहन से, बहन भाई से झगड़ा करती है; मित्र मित्र से झगड़ता है—इस प्रकार वे झगड़ते हुए एक दूसरे से मुक्का-मुक्की होते हैं, डंडों से भी पीटते हैं, शस्त्रों से भी प्रहार करते हैं। वे मर जाते हैं वा मरणांत दुःख पाते हैं।

और फिर भिक्षुओ, कामना ही के कारण, कामना ही की वजह से, कामना ही के हेतु से, (चोर) घर में सेंध लगाते हैं, लूटते हैं, उजाड़ डालते हैं, रास्ता रोकते हैं तथा पर-स्त्री-गमन करते हैं। ऐसे आदमियों को राजा पकड़वाकर तरह तरह के दण्ड दिलवाते हैं:—चाबुक लगवाते हैं, बेंत से तथा डंडे से पिटवाते हैं, हाथ कटवा देते हैं, पैर कटवा देते हैं, हाथ-पैर दोनों कटवा देते हैं, कुत्तों से नुचवा डालते हैं, जीते जी सूली पर चढ़ा देते हैं तथा तलवार से सिर कटवा डालते हैं। वे मर जाते हैं वा मरणांत दुःख पाते हैं।

और फिर भिक्षुओ, कामना ही के कारण, कामना ही की वजह से, कामना ही के हेतु से (आदमी) शरीर से दुष्कर्म करते हैं, वाणी से दुष्कर्म करते हैं, तथा मन से दुष्कर्म करते हैं। शरीर, वाणी तथा मन से दुष्कर्म करके शरीर छूटने पर मरने के अनन्तर दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

न आकाश में, न समुद्र की सतह में, न पर्वतों के विवर में—संसार में कहीं भी कोई ऐसी जगह नहीं है, जहां भाग कर मनुष्य पाप से बच सके। ध. १

भिक्षुओ, ऐसा समय आता है जब यह महासमुद्र सूख जाता है, नहीं रहता है; लेकिन अविद्या और तृष्णा से संचालित, भटकते फिरते प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं होता। स. २१-१०

भिक्षुओ, ऐसा समय आता है, जब यह महापृथ्वी जल जाती है, विनाश को प्राप्त होती है, नहीं रहती है; लेकिन अविद्या और तृष्णा से संचालित, भटकते फिरते प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं।

---

(३)

दुःख निरोध आर्य-सत्य

दी. २२ भिक्षुओ, दुःख के निरोध के बारे में आर्य-सत्य क्या है?

उसी तृष्णा से सम्पूर्ण वैराग्य, उस तृष्णा का निरोध, त्याग, परित्याग, उस तृष्णा से मुक्ति, अनासक्ति—यही दुःख के निरोध के बारे में आर्य-सत्य है।

किस विषय में यह तृष्णा प्रहीण करने से प्रहीण होती है, निरुद्ध करने से निरुद्ध होती है? संसार में जो प्रिय-कर है, संसार में जिसमें मज़ा है, उसीमें यह तृष्णा प्रहीण करने से प्रहीण होती है, उसीमें निरोध करने से निरुद्ध होती है।

स. १२.७ भिक्षुओ, संसार में जो कुछ भी प्रिय-कर लगता है, संसार में जिसमें मज़ा लगता है, उसे चाहे पिछले समय के, चाहे अब के, चाहे भविष्य के, जो भी श्रमण-ब्राह्मण दुःख करके समझेंगे, रोग करके समझेंगे, उससे डरेंगे, वही तृष्णा को छोड़ सकेंगे।

इ. ९६ काम-तृष्णा और भव-तृष्णा से मुक्त होने पर, प्राणी फिर जन्म ग्रहण नहीं करता। क्योंकि तृष्णा के सम्पूर्ण निरोध से उपादान निरुद्ध हो जाता है। उपादान निरुद्ध हुआ, तो भव निरुद्ध। भव निरुद्ध हुआ तो पैदाइश निरुद्ध। पैदा होना निरुद्ध हुआ, तो बूढ़ा होना, मरना, शोक-करना, रोना-पीटना, पीड़ित होना, चिन्तित-होना, परेशान होना—यह सब निरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुःख-स्कन्ध का निरोध होता है।

स. २१-३ भिक्षुओ, यह जो रूप का निरोध है, उपशमन है, अस्त होना है, यही

दुःख का निरोध है, रोगों का उपशमन है, जरा-मरण का अस्त होना है। यह जो वेदना का निरोध है, संज्ञा का निरोध है, संस्कारों का निरोध है, तथा विज्ञान का निरोध है, उपशमन है, अस्त होना है; यही दुःख का निरोध है, रोगों का उपशमन है, जरामरण का अस्त होना है।

यही शान्ति है, यही श्रेष्ठता है, यह जो सभी संस्कारों का शमन, सभी चित्त-मलों का त्याग, तृष्णा का क्षय, विराग-स्वरूप, निरोधस्वरूप निर्वाण है। अ. ३-३२

भिक्षुओ, जिसका हृदय राग से अनुरक्त है, द्वेष से दूषित है, मोह से मूढ़ है, वह ऐसी बातें सोचता है, जिससे उसे दुःख हो, वह ऐसी बाते सोचता है जिससे औरों को दुःख हो; वह ऐसी बाते सोचता है जिससे उसे तथा औरों को—दोनों को दुःख हो। उसको मानसिक दुःख तथा चिन्ता रहती है। अ. ३-५२

लेकिन, भिक्षुओ, जिसका हृदय राग से मुक्त है, द्वेष से मुक्त है, मोह से मुक्त है; वह ऐसी बातें नहीं सोचता, जिससे उसे दुःख हो, वह ऐसी बातें नहीं सोचता जिससे औरों को दुःख हो, वह ऐसी बातें नहीं सोचता जिससे उसे तथा औरों को —दोनों को दुःख हो। उसको मानसिक दुःख तथा चिन्ता नहीं होती।

इस प्रकार भिक्षुओ आदमी जीते जी **निर्वाण** को प्राप्त करता है; 'जो काल से सीमित नहीं, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि 'आओ और स्वयं देख लो'; जो ऊपर उठाने वाला है, जिसे प्रत्येक बुद्धिमान् आदमी स्वयं प्रत्यक्ष कर सकता है।

भिक्षु जब शान्त-चित्त हो जाता है, जब (बन्धनों से) बिल्कुल मुक्त हो जाता है, तब उसको कुछ और करना बाकी नहीं रहता। जो कार्य्य वह करता है, उसमें कोई ऐसा नहीं होता, जिसके लिए उसे पश्चात्ताप हो।

जिस प्रकार एक घन-पर्वत को हवा तनिक नहीं हिला पाती उसी प्रकार जितने भी रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श तथा अनुकूल वा प्रतिकूल विषय हैं,

वे स्थित-प्रज्ञ भिक्षु को तनिक नहीं हिला पाते। उसका चित्त स्थिर होता है, मुक्त होता है, उसके वश में होता है।

इ. भिक्षुओ, ऐसा आयतन है, जहाँ न पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश-आयतन है, न विज्ञान-आयतन है, न अकिञ्चन-आयतन है, न नेवसञ्ज्ञानासञ्ञा-आयतन है, न यह लोक है, न परलोक है, न चाँद है, न सूर्य्य है; वहाँ भिक्षुओ न जाना होता है, न आना होता है, न ठहरना होता है, न च्युत होना होता है, न उत्पन्न होना होता है; वह आधार-रहित है, संसरण-रहित है, आलम्वन-रहित है। यही दुःख का अन्त है।

उ. ८ भिक्षुओ! जात (=उत्पन्न) का अभाव है, भूत का अभाव है, कृत का अभाव है, संस्कृत का अभाव है। यदि भिक्षुओ, जात का अभाव न होता, भूत का अभाव न होता, कृत का अभाव न होता, संस्कृत का अभाव न होता, तो भिक्षुओ, जात से, भूत से, कृत से, संस्कृत से, मुक्ति न दिखाई देती। लेकिन क्योंकि भिक्षुओ, जात का अभाव है, भूत का अभाव है, कृत का अभाव है, संस्कृत का अभाव है; इसी लिए जात से, भूत से, कृत से, संस्कृत से मुक्ति दिखाई देती है।

दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य

दुःख निरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग आर्य-सत्य कौन सा है ? स.

यह जो कामोपभोग का हीन, ग्राम्य, अशिष्ट, अनार्य, अनर्थ-कर जीवन है और यह जो अपने शरीर को व्यर्थ क्लेश देने का दुःख मय, अनार्य, अनर्थकर जीवन है, इन दोनों सिरे की बातों से बचकर तथागत ने मध्यम-मार्ग का ज्ञान प्राप्त किया है जो कि आँख खोल देने वाला है, ज्ञान करा देने वाला है, शमन के लिए, अभिज्ञा के लिए, बोध के लिए, निर्वाण के लिए होता है।

यही आर्य अष्टांगिक मार्ग दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला है; जो कि यूँ है:—

१. सम्यक् दृष्टि २. सम्यक् संकल्प	प्रज्ञा
३. सम्यक् वाणी ४. सम्यक् कर्मान्त ५. सम्यक् आजीविका	शील
६. सम्यक् व्यायाम ७. सम्यक् स्मृति ८. सम्यक् समाधि	समाधि

निर्मल ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही एक मार्ग है। और कोई मार्ग नहीं। ध. २०
इस मार्ग पर चलने से तुम दुःख का नाश करोगे। भिक्षुओ, अपने आप

ध. १६ अपने दीपक बनो, अपनी ही शरण जाओ, किसी दूसरे की शरण नहीं। काम तो तुम्हें ही सिरे चढ़ाना है, तथागत तो केवल मार्ग बतला देने वाले हैं।

म. २६ भिक्षुओ, ध्यान दो, अमृत मिला है। मैं तुम्हें सिखाता हूँ। मैं तुम्हें धर्मोपदेश देता हूँ। जैसे मैं बताता हूँ, उसके अनुकूल आचरण करके जिस उद्देश की पूर्ति के लिए कुल-पुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य को शीघ्र ही इसी जन्म में जान कर, साक्षात कर, प्राप्त कर, विचरो।

सम्यक् दृष्टि

भिक्षुओ, सम्यक्-दृष्टि कौन सी होती है? भिक्षुओ, जिस समय आर्य-श्रावक दुराचरण को पहचान लेता है, दुराचरण के मूल कारण को पहचान लेता है; सदाचरण को पहचान लेता है सदाचरण के मूल कारण को पहचान लेता है, तब उसकी दृष्टि, इस कारण से भी सम्यक्-दृष्टि, सीधी-दृष्टि कहलाती है, उसकी इस धर्म में अचल श्रद्धा है, वह इस धर्म में आ गया है। म. १

भिक्षुओ, दुराचरण कौनसे हैं?

दुराचरण	कृत्य
१. जीव-हिंसा करना दुराचरण है	शारीरिक कृत्य
२. चोरी करना दुराचरण है	
३. कामभोग सम्बन्धी मिथ्याचार दुराचरण है	
४. झूठ बोलना दुराचरण है	वाणी के कृत्य
५. चुगली खाना दुराचरण है	
६. कठोर बोलना दुराचरण है	
७. फजूल बोलना दुराचरण है	
८. लोभ करना दुराचरण है	मन के कृत्य
९. क्रोध करना दुराचरण है	
१०. मिथ्या-दृष्टि रखना दुराचरण है	

भिक्षुओ, दुराचरण का मूल कारण क्या है? दुराचरण का मूल कारण

लोभ है, दुराचरण का मूल कारण द्वेष है, दुराचरण का मूल कारण मोह है।

म. ९ भिक्षुओ, सदाचरण क्या है ?

१. जीवहिंसा न करना सदाचरण है
२. चोरी न करना सदाचरण है
३. काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचरण न करना सदाचरण है
४. झूठ न बोलना सदाचरण है
५. चुगली न करना सदाचरण है
६. कठोर न बोलना सदाचरण है
७. फजूल न बोलना सदाचरण है
८. अ-लोभ सदाचरण है
९. अ-द्वेष सदाचरण है
१०. **सम्यक्-दृष्टि** सदाचरण है

भिक्षुओ, सदाचरण का मूल कारण क्या है ?

सदाचरण का मूल कारण लोभ का न होना है, सदाचरण का मूल कारण द्वेष का न होना है, सदाचरण का मूल कारण मोह का न होना है।

और भिक्षुओ, जो आर्य-श्रावक दुःख को समझता है, दुःख के समुदय को समझता है, दुःख के निरोध को समझता है, दुःख के निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है, वह इस समझ के कारण सम्यक्-दृष्टि वाला होता है।

स. २१-५ भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि मैं तब तक भगवान् (बुद्ध) के उपदेश के अनुसार नहीं चलूँगा, जब तक कि भगवान् मुझे यह न बता देंगे कि संसार शाश्वत है, वा अशास्वत; संसार सान्त है वा अनन्त; जीव वही है जो शरीर है वा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है; मृत्यु के बाद तथागत रहते हैं, वा मृत्यु के बाद तथागत नहीं रहते—तो भिक्षुओ, यह बातें तो तथागत के द्वारा बे-कही ही रहेंगी और वह मनुष्य यूँ ही मर जायगा।

भिक्षुओ, जैसे किसी आदमी को जहर में बुझा हुआ तीर लगा हो। उस के मित्र,रिश्तेदार उसे तीर निकालने वाले वैद्य के पास ले जावें। लेकिन वह कहे:—"मैं तब तक यह तीर नहीं निकलवाऊँगा, जब तक यह न जान लूं कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है वह क्षत्रिय है, ब्राह्मण है, वैश्य है, वा शूद्र है;" अथवा वह कहे:—"मैं तब तक यह तीर नहीं निकलवाऊँगा, जब तक यह न जान लूं कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है, उसका अमुक नाम है, अमुक गोत्र है;" अथवा वह कहे:—"मैं तब तक यह तीर नहीं निकलवाऊँगा; जब तक वह न जान लूं कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है वह लम्बा है, छोटा है वा मँझले कद का है;" तो हे भिक्षुओ, उस आदमी को इन बातों का पता लगेगा ही नहीं, और वह यूं ही मर जायगा। म. ६३

भिक्षुओ, 'संसार शास्वत है' ऐसा मत रहने पर भी 'संसार अशास्वत है' ऐसा मत रहने पर भी, 'संसार सान्त है' ऐसा मत रहने पर भी, 'संसार अनन्त है' ऐसा मत रहने पर भी, 'जीव वही है जो शरीर है', ऐसा मत रहने पर भी, 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है' ऐसा मत रहने पर भी, 'मृत्यु के बाद तथागत रहते हैं' ऐसा मत रहने पर भी, 'मृत्यु के बाद तथागत नहीं रहते' ऐसा मत रहने पर भी—जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, रोना-पीटना, पीड़ित-होना, चिन्तित-होना, परेशान-होना तो (हर हालत में) हैं ही, और मैं इसी जन्म में—जीते जी—इन्हीं सब के नाश का उपदेश देता हूँ।

भिक्षुओ, जिस अज्ञ पृथग्जन ने आर्यो की संगति नहीं की, आर्य-धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं किया, आर्य-धर्म का अभ्यास नहीं किया; सत्पुरुषों की संगति नही की, सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं किया, सद्धर्मका अभ्यास नहीं किया, उसका मन, सत्काय-दृष्टि से युक्त होता है; वह यह नहीं जानता कि 'सत्काय दृष्टि' पैदा होने पर, उससे किस प्रकार मुक्त हुआ जाता है। उसकी 'सत्काय-दृष्टि' दृढ़ होकर उसको पतन की ओर ले जाने वाला बन्धन बन जाती है।..... उसका मन विचिकित्सा से युक्त होता है..... उसका म. ६४

मन 'शील-व्रत-परामर्श' से युक्त होता है... उसका मन काम-वासना से युक्त होता है.... उसका मन क्रोध से युक्त होता है.... उसका क्रोध दृढ़ हो कर उसे पतन की ओर ले जाने वाला बन्धन बन जाता है।

वह यह नहीं जानता कि उसे किन बातों को मन में स्थान नहीं देना चाहिये; और किन बातों को मन में स्थान देना चाहिये। इस लिए वह जिन बातों को मन में स्थान नहीं देना चाहिये, उन बातों को मन में स्थान देता है और जिन बातों को मन में स्थान देना चाहिये उनको मन में स्थान नहीं देता।

म. १ वह नामुनासिब ढंग से विचार करता है:—'मैं भूत-काल में था कि नहीं था? मैं भूत-काल में क्या था? मैं भूत-काल में कैसे था? मैं भूत-काल में क्या होकर फिर क्या क्या हुआ? मैं भविष्यत् काल में होऊँगा कि नहीं होऊँगा? मैं भविष्यत्-काल में क्या होऊँगा? मैं भविष्यत्-काल में कैसे होऊँगा? मैं भविष्यत्-काल में क्या होकर क्या होऊँगा?" अथवा वह वर्तमान-काल के सम्बन्ध में सन्देह-शील होता है—"मैं हूँ कि नहीं हूँ? मैं क्या हूँ? मैं कैसे हूँ? यह सत्व कहाँ से आया? यह कहाँ जाएगा?"

उसके इस प्रकार नामुनासिब ढंग से विचार करने से उसके मन में इन छः दृष्टियों (=मतों) में से एक दृष्टि घर कर लेती है। या तो वह इस बात को सच समझता है (१) "मेरा आत्मा है," या वह इस बात को सच समझता है (२) "मेरा आत्मा नहीं है"; या तो वह इस बात को सच समझता है कि (३) "मैं आत्मा' से आत्मा को पहचानता हूँ," या वह इस बात को सच समझता है कि (४) "मैं अनात्मा से आत्मा को पहचानता हूँ," अथवा उसकी ऐसी दृष्टि होती है (५) जो "आत्मा" कहलाता है यह ही अच्छे बुरे कर्मों के फल का भोगने वाला है तथा (६) यह आत्मा नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, अपरिवर्तन-शील है, जैसा है वैसा ही (सदैव) रहेगा—भिक्षुओ, यह सब केवल मूर्खता ही मूर्खता है।

भिक्षुओ, इसे कहते हैं मतों में जा पड़ना, मतों की गहनता, मतों का

कान्तार, मतों का दिखावा, मतों का फन्दा, तथा मतों का बन्धन। इन मतों के बन्धन में बँधा हुआ आदमी, जिसने (सद्धर्म को) नहीं सुना वह जन्म, बुढ़ापे, तथा मृत्यु से मुक्त नहीं होता और मुक्त नहीं होता, शोक से, रोने-पीटने से, पीड़ित होने से, चिन्तित होने से, परेशान होने से। मैं कहता हूँ कि वह दुःख से मुक्त नहीं होता।

भिक्षुओ, जिस पंडित आदमी ने आर्यों की संगति की है, आर्य-धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है, आर्य-धर्म का अच्छी तरह अभ्यास किया है; सत्पुरुषों की संगति की है, सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है, सद्धर्म का अभ्यास किया है— वह यह जानता है कि उसे किन बातों को मन में स्थान देना चाहिये, और किन बातों को मन में स्थान नहीं देना चाहिये। यह जानते हुए वह जिन बातों को मन में स्थान नहीं देना चाहिये, उन्हें मन में स्थान नहीं देता है, जिन्हें मन में स्थान देना चाहिये, उन्हें मन में स्थान देता है। वह "यह दुःख है" इसे भली प्रकार हृदयङ्गम करता है, "यह दुःख का समुदय है" इसे भली प्रकार हृदयङ्गम करता है, "यह दुःख का निरोध है," इसे भली प्रकार हृदयङ्गम करता है; और "यह दुःख के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है"—इसे भली प्रकार हृदयङ्गम करता है। म. २

इन्हें इस तरह हृदयङ्गम करने वाले के तीनों बन्धन कट जाते हैं:— (१) सत्काय-दृष्टि, (२) विचिकित्सा, (३) शील-व्रत परामर्श। जिनके भिक्षुओ, यह तीनों बन्धन कट गये हैं, वे सभी श्रोतापन्न हैं, उनका पतन असम्भव है, उनकी सम्बोधि-प्राप्ति निश्चित है। म. २२

पृथ्वी के एक छत्र राज्य से, स्वर्ग-लोक को जाने से, समस्त विश्व के आधिपत्य से भी बढ़कर है श्रोतापत्ति-फल। ध. १०८

भिक्षुओ, यदि कोई पूछे कि भगवान् गौतम किस दृष्टि के हैं ? तो उसे भिक्षुओ, क्या उत्तर दोगे ? भिक्षुओ 'तथागत किसी दृष्टि के हैं' ऐसी बात नहीं रही है। भिक्षुओ तथागत ने यह सब देख लिया है कि यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का अस्त होना है; यह वेदना है, यह वेदना का म. ७२

समुदय है, यह वेदना का अस्त होना है; यह सञ्ञा है, यह सञ्ञा का समुदय है, यह सञ्ञा का अस्त होना है, यह संखार हैं, यह संखारों का समुदय है, यह संखारों का अस्त होना है तथा यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है; यह विज्ञान का अस्त होना है। इस लिये कहता हूँ कि सभी मानताओं के, सभी अस्तित्वों के सभी अहङ्कारों के, सभी "मेरे" के, सभी अभिमानों के नाश से, विराग से, त्याग से, छूटने से, उपादान न रहने से, तथागत विमुक्त हो गये हैं।

अ.३।१३४ भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे उत्पन्न न हों, यह सदैव यूँ ही रहता है। सभी संस्कार अनित्य हैं, जैसे रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, सञ्ञा अनित्य है, संस्कार अनित्य हैं, विज्ञान अनित्य है।

भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे उत्पन्न न हों, यह सदैव यूँ ही रहता है। सभी संस्कार दुःख हैं, जैसे रूप दुःख है, वेदना दुःख है, सञ्ञा दुःख है, संस्कार दुःख है, विज्ञान दुःख है।

भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे तथागत उत्पन्न न हों, यह सदैव यूँ ही रहता है। सभी धर्म अनात्म हैं, जैसे रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, सञ्ञा अनात्म है, संस्कार अनात्म हैं, विज्ञान अनात्म है।

स. १६ भिक्षुओ, पण्डित जनों का कहना है कि रूप नित्य नहीं, ध्रुव नहीं, शाश्वत नहीं, अपरिवर्तन-शील नहीं। मैं भी कहता हूँ कि नहीं है। वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान, नित्य नहीं, ध्रुव नहीं, शाश्वत नहीं, अपरिवर्तन-शील नहीं। मैं भी कहता हूँ कि नहीं हैं। भिक्षुओ तथागत के इस प्रकार कहने, उपदेश करने, प्रकाशित करने, स्थापित करने, विस्तार करने, विभाजन करने और उघाड़ कर दिखा देने पर भी यदि कोई नही समझता है, नहीं देखता है, तो मैं ऐसे मूर्ख, पृथग्जन, अन्धे, जिसे आँख नहीं, जो समझता

अ. १.१५ नहीं, जो देखता नहीं—को क्या करूँ? यह वात भिक्षुओ, विल्कुल असम्भव है, इसके लिए विल्कुल गुंजायश नहीं है कि कोई आँख वाला आदमी किसी भी धर्म को आत्मा करके ग्रहण करे।

भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि वेदना मेरा आत्मा है, तो उसे यूं कहना चाहिये कि आयुष्मान् वेदना तीन तरह की होती है (१) सुख-वेदना, (२) दुःख-वेदना, (३) असुख-अदुख वेदना। इन तीन तरह की वेदनाओं में से किस तरह की वेदना को आप 'आत्मा' समझते हैं? दी. १५

क्योंकि भिक्षुओ, जिस समय कोई सुख-वेदना की अनुभूति करता है, उस समय उसे न तो दुःख-वेदना की अनुभूति होती है, न असुख-अदुख वेदना की, उस समय उसे केवल सुख-वेदना की ही अनुभूति होती है। जिस समय कोई दुःख-वेदना की अनुभूति करता है, उस समय उसे न तो सुख-वेदना की अनुभूति है, न असुख-अदुःख वेदना की; उस समय उसे केवल दुःख-वेदना की ही अनुभूति होती है। जिस समय कोई असुख-अदुःख वेदना की अनुभूति करता है, उस समय न उसे सुख-वेदना की अनुभूति होती है, न दुःख वेदना की, उस समय उसे केवल असुख-अदुख वेदना की अनुभूति होती है।

भिक्षुओ, यह तीनों वेदनायें अनित्य हैं, संस्कृत हैं, प्रत्यय से उत्पन्न हैं, क्षय होने वाली हैं, व्यय होने वाली हैं, विराग को प्राप्त होने वाली हैं, निरोध को प्राप्त होने वाली हैं। इन तीनों वेदनाओं में से किसी एक की भी अनुभूति करते समय यदि किसी को ऐसा होता है कि "यह आत्मा है" तो फिर उस वेदना का निरोध होते समय उसको ऐसा होगा कि "मेरा आत्मा बिखर रहा है"। इस प्रकार वह अपने सामने ही अनित्य, सुख-दुःख मय, उत्पन्न तथा विनाश होने वाले "आत्मा" को देखता है।

भिक्षुओ यदि कोई कहे "मेरी वेदना आत्मा नहीं, आत्मा की अनुभूति नहीं होती"; तो उससे यह पूछना चाहिये कि आयुष्मान्, जहाँ किसी की अनुभूति ही नहीं, उसके बारे में क्या यह हो सकता है कि मैं यह (=आत्मा) हूँ?"

लेकिन भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि "न तो मेरी वेदना आत्मा है, और न ही मेरे आत्मा की अननुभूति होती है, किन्तु मेरा आत्मा

अनुभव करता है, मेरे आत्मा का स्वभाव=गुण है वेदना।" तो उससे पूछना चाहिये, कि "आयुष्मान्, यदि सभी वेदनाओं का सम्पूर्ण निरोध हो जाए, कोई एक भी वेदना न रहे, तो क्या किसी एक भी वेदना के न होने पर ऐसा होगा कि यह (आत्मा) मैं हूँ" ?

म. १४८ और भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि "मन आत्मा है" तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि मन की उत्पत्ति और निरोध, दोनों दिखाई देते हैं। जिस की उत्पत्ति और निरोध दोनों दिखाई देते हैं, उसे आत्मा मान लेने पर यह मान लेना होता है कि "मेरा आत्मा उत्पन्न होता है और मरता है,।" इस लिए "मन आत्मा है"—यह ठीक नहीं है। मन अनात्म है।

और भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि धर्म (=मन के विषय) आत्मा है, तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि धर्म की उत्पत्ति और निरोध दोनों दिखाई देते हैं। जिस की उत्पत्ति और निरोध दोनों दिखाई देते हैं, उसे 'आत्मा' मान लेने पर यह मान लेना होता है कि "मेरा आत्मा उत्पन्न होता है और मरता है" इस लिए "धर्म आत्मा है"—यह ठीक नहीं है। धर्म अनात्म हैं।

और भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि 'मनोविज्ञान आत्मा है' तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि मनोविज्ञान की उत्पत्ति और निरोध, दोनों दिखाई देते हैं। जिसकी उत्पत्ति और निरोध दोनों दिखाई देते हैं, उसे 'आत्मा' मान लेने पर यह मान लेना होता है कि 'मेरा आत्मा उत्पन्न होता तथा मरता है।' इस लिए "मनो-विज्ञान आत्मा है"—यह ठीक नहीं है। मनो-विज्ञान अनात्म है।

स. २१७ भिक्षुओ, यह कहीं अच्छा है कि वह आदमी जिसने सद्धर्म को नहीं सुना, चार महाभूतों से बने शरीर को आत्मा समझ ले; लेकिन चित्त को नहीं। वह क्यों? यह जो चार महाभूतों से बना हुआ शरीर है यह एक साल—दो साल—तीन साल—चार साल—पाँच साल—छः साल

और सात साल तक भी एक जैसा प्रतीत होता है; लेकिन जिसे चित्त कहते हैं, मन कहते हैं, विज्ञान कहते हैं वह तो रात को और ही उत्पन्न होता है तथा निरोध होता है और दिन को और ही।

इस लिए भिक्षुओ, इसे अच्छी प्रकार समझ कर यथार्थ रूप से 'यूँ समझना चाहिये कि यह जितना भी रूप है, जितनी भी वेदना है, जितनी भी संज्ञा है, जितने भी संस्कार हैं, जितना भी विज्ञान है—चाहे भूतकाल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्यत् का; चाहे अपने अन्दर का हो, अथवा बाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप—वह "न मेरा है, न वह मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है।"'

भिक्षुओ, यदि मुझे (लोग) ऐसा पूछें कि "तुम पहले समय में थे कि नहीं थे ? तुम भविष्य में होगे कि नहीं होगे ? तुम अब हो कि नहीं हो ?" तो उनके ऐसा पूछने पर मैं उनको यूँ कहूँगा कि "मैं पहले समय में था, 'नहीं था' ऐसा नहीं है; मैं भविष्यत् में होऊँगा 'नहीं होऊँगा' ऐसा नहीं है, मैं अब हूँ, 'नहीं हूँ' ऐसा नहीं है।" दी. ९

भिक्षुओ, जो कोई प्रतीत्य-समुत्पाद को समझता है, वह धर्म को समझता है। जो धर्म को समझता है, वह प्रतीत्य-समुत्पाद को समझता है। जैसे भिक्षुओ, गो से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, घी से घीमण्डा होता है। जिस समय में दूध होता है, उस समय न उसे दही कहते हैं, न मक्खन, न घी, न घी का मांडा। जिस समय वह दही होता है, उस समय न उसे दूध कहते हैं, न मक्खन, न घी, न घी का मांडा। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय मेरा भूत-काल का जन्म था, उस समय मेरा भूत-काल का जन्म ही सत्य था; यह वर्तमान और भविष्यत् का जन्म असत्य था। जब मेरा भविष्यत् काल का जन्म होगा; उस समय मेरा भविष्यत्-काल का जन्म ही सत्य होगा, यह वर्तमान और भूत-काल का जन्म असत्य होगा। यह जो अब मेरा वर्तमान में जन्म है; सो इस समय मेरा यही जन्म सत्य है, भूत-काल का और भविष्यत् का जन्म असत्य है।

भिक्षुओ, यह लौकिक संज्ञा है, लौकिक निरुक्तियाँ हैं, लौकिक व्यवहार हैं, लौकिक प्रज्ञप्तियाँ हैं—इनका तथागत व्यवहार करते हैं, लेकिन इनमें फँसते नहीं।

अ. ३ भिक्षुओ, 'जीव (आत्मा) और शरीर भिन्न भिन्न हैं' ऐसा मत रहने से श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता। और 'जीव (आत्मा) तथा शरीर दोनों एक हैं' ऐसा मत रहने से भी श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता।

इस लिए भिक्षुओ, इन दोनों सिरे की बातों को छोड़ कर तथागत बीच के धर्म का उपदेश देते हैं:—

अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नामरूप, नामरूप के होने से छः आयतन, छः आयतनों के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, मरना, शोक, रोना-पीटना, दुक्ख, मानसिक चिन्ता तथा परेशानी होती है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुःख-स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। भिक्षुओ, इसे प्रतीत्य-समुत्पाद कहते हैं।

अविद्या के ही सम्पूर्ण विराग से, निरोध से संस्कारों का निरोध होता है। संस्कारों के निरोध से विज्ञान-निरोध, विज्ञान के निरोध से नामरूप निरोध, नामरूप के निरोध से छः आयतनों का निरोध, छः आयतनों के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव-निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से बुढ़ापे, शोक, रोने-पीटने, दुक्ख, मानसिक चिन्ता तथा परेशानी का निरोध होता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुःख-स्कन्ध का निरोध होता है।

म. ४३ भिक्षुओ, जिन प्राणियों पर अविद्या का परदा पड़ा हुआ है, जो तृष्णा

के बन्धन से बँधे हैं, वह जहाँ तहाँ आसक्त होते हैं और इस प्रकार उनको बार बार जन्म लेना पड़ता है।

भिक्षुओ, जो कर्म लोभ का परिणाम है, लोभ के कारण किया गया है, लोभ से उत्पन्न हुआ है, जहाँ जहाँ जन्म होता है, वह कर्म वहीं वहीं पकता है। भिक्षुओ, जो कर्म द्वेष का परिणाम है, द्वेष के कारण किया गया है, द्वेष से उत्पन्न हुआ है, जहाँ जहाँ जन्म होता है, वह कर्म वहीं वहीं पकता है। भिक्षुओ, जो कर्म मूढ़ता का परिणाम है, मूढ़ता के कारण किया गया है, मूढ़ता से उत्पन्न हुआ है, जहाँ जहाँ जन्म होता है वह कर्म वहीं वहीं पकता है। जहाँ वह कर्म पकता है वहाँ उस कर्म का फल-भुगतना होता है, इसी जन्म में वा किसी दूसरे जन्म में। अ. ३।३३

भिक्षुओ, अविद्या के नाश और विद्या के उत्पन्न होने से, तृष्णा के निरोध होने पर पुनर्जन्म नहीं होता। म. ४३

जो अलोभ का परिणाम है, अलोभ के कारण किया गया है, अलोभ से उत्पन्न हुआ है; जो अक्रोध का परिणाम है, अक्रोध के कारण किया गया है, अक्रोध से उत्पन्न हुआ है; जो अमूढ़ता का परिणाम है, अमूढ़ता के कारण किया गया है, अमूढ़ता से उत्पन्न हुआ है, वह कर्म लोभ, क्रोध, मूढ़ता के नहीं रहने से नाश हो जाता है, जड़ से उखड़ जाता है, सिर कटे ताड़ जैसा हो जाता है, नहीं रहता; फिर उत्पन्न नहीं होता है। अ. ३।३३

वह जो लोग कहते हैं कि "श्रमण गौतम उच्छेदवादी है, उच्छेदवाद का उपदेश करता है, शिष्यों को उच्छेदवाद की शिक्षा देता है" यदि वह उक्त अर्थों मे कहते हैं, तो वह ठीक कहते हैं। भिक्षुओ, मैं राग, द्वेष, मोह तथा अनेक प्रकार के पाप-कर्मों के उच्छेद का उपदेश करता हूँ। अ. २

(६)

सम्यक् संकल्प

भिक्षुओ, सम्यक् संकल्प क्या है?

नैष्क्रम्य संकल्प सम्यक् संकल्प है।
अव्यापादसंकल्प सम्यक् संकल्प है।
अविहिंसा संकल्प सम्यक् संकल्प है।

---

(७)

सम्यक् वाणी

अ. १० भिक्षुओ, सम्यक् वाणी किसे कहते हैं?

भिक्षुओ, एक आदमी झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलने से दूर रह सत्य बोलने वाला, सच्चा, लोक में यथार्थ-वादी होता है। वह सभा में, परिषद् में, भाई-चारे में, पंचायत में, वा राज-सभा में किसी भी जगह जाता है। वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि 'जो जानते हो, उसे ठीक ठीक कहो'। वह यदि नहीं जानता है, तो कहता है कि "नहीं जानता हूँ", यदि जानता है, तो कहता है कि "जानता हूँ।" जिस बात को नही देखता है, उसे कहता है कि नहीं देखता हूँ, जिसे देखता है, उसे कहता है कि देखता हूँ।

इस प्रकार न वह अपने लिये न किसी दूसरे के लिये, न किसी लौकिक पदार्थ के ही लिये जान बूझ कर झूठ बोलता है।

वह चुगली करना छोड़, चुगली करने से दूर रह, यहाँ की बात सुनकर वहाँ नहीं कहता कि यहाँ के लोगों में झगड़ा हो जाये, वहाँ की बात सुन कर यहाँ नहीं कहता कि वहाँ के लोगों में झगड़ा हो जाए। वह एक दूसरे से पृथग् पृथग् होने वालों को मिलाता है, मिले हुओं को पृथग् नहीं होने देता। वह ऐसी वाणी बोलता है जिस से लोग इकट्ठे रहें, मिल जुल कर रहें।

वह कठोर वाणी छोड़, कठोर शब्दों से दूर रह ऐसी वाणी बोलता है जो कानों को सुख देने वाली, प्रेम भरी, हृदय में पैठ जाने वाली, सभ्य, बहुत जनों को प्रिय लगने वाली हो। वह जानता है:—

(१) जो लोग यह सोचते रहते हैं कि 'इसने मुझे गाली दी, इसने मुझे मारा, इसने मेरा मजाक उड़ाया', उनका वैर कभी शान्त नहीं होता। ध. १

(२) वैर वैर से कभी शान्त नहीं होता। अवैर से ही होता है— यही सनातन बात है।

फजूल बोलना छोड़कर, फजूल बोलने से दूर रह कर वह ऐसी वाणी बोलता है जो समयानुकूल हो, यथार्थ हो, बेमतलब न हो, धर्मानुकूल हो नियमानुकूल हो......। अ. १

भिक्षुओ, आपस में इकट्ठे होने पर दो बातों में से एक बात होनी चाहिये या तो धार्मिक बात-चीत या फिर आर्य-मौन। म. २६

भिक्षुओ, इसे सम्यक् वाणी कहते हैं।

(८)

सम्यक् कर्मान्त

अ. १० भिक्षुओ, सम्यक् कर्मान्त (=कर्म) क्या है?

एक आदमी जीव-हिंसा को छोड़ जीव-हिंसा से दूर रहता है। वह दण्ड का प्रयोग नहीं करता, शस्त्र का प्रयोग नहीं करता, लज्जाशील, दयावान्, सभी प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाला होता है।

एक आदमी चोरी करना छोड़, चोरी करने से दूर रहता है। बिना चोरी किए जो प्राप्त होता है, केवल उसी को ग्रहण कर पवित्र जीवन व्यतीत करता है। जो पराया माल है, चाहे ग्राम में हो, चाहे जंगल में, वह उसकी चोरी नहीं करता।

एक आदमी काम-भोग का जो मिथ्याचार है, उसे छोड़, काम-भोग के मिथ्याचार से दूर रहता है। वह किसी ऐसी स्त्री से काम-भोग का सेवन नहीं करता जो उसकी अपनी माता के घर में है, पिता के घर में है, माता-पिता के घर में है, भाई के घर में है, बहिन के घर में है, रिश्तेदारों के घर में है। गोत्र वालों के घर में है, धर्म की लड़की है, जिसका किसी से विवाह हो गया है, जो दासी है, और तो और जो गले में माला डाले नाचने वाली है।

भिक्षुओ, उसे सम्यक् कर्म कहते हैं।

(९)

सम्यक् आजीविका

भिक्षुओ, सम्यक् आजीविका क्या है?

भिक्षुओ, आर्य-श्रावक मिथ्या-आजीविका को छोड़ कर, सम्यक् आजी- दी. २२ विका से रोजी कमाता है। यही सम्यक् आजीविका है।

भिक्षुओ, उपासक को चाहिये कि वह इन पांच व्यापारों में से किसी एक अ. ५ को भी न करे। कौन से पांच? शस्त्रों का व्यापार, जानवरों का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार, तथा विष का व्यापार।

(१०)

सम्यक् व्यायाम (=प्रयत्न)

भिक्षुओ, चार प्रकार के प्रयत्न सम्यक्-प्रयत्न हैं। कौन से चार? अ. ४ संयम-प्रयत्न, प्रहाण-प्रयत्न, भावना-प्रयत्न तथा अनुरक्षण-प्रयत्न।

भिक्षुओ, संयम-प्रयत्न क्या है? एक भिक्षु प्रयत्न करता है, जोर लगाता है, मन को काबू में रखता है कि कोई अकुशल, पापमय ख्याल जो अभी तक उसके मन में नहीं है, उत्पन्न न हो।

वह अपनी आँख से किसी सुन्दर रूप को देखता है, (लेकिन) उसमें न आँख गड़ाता है न मजा लेता है। क्योंकि कहीं चक्षु के असंयम से लोभ-

द्वेष आदि अकुशल पाप-मय ख्याल घर न कर लें। उन पापमय ख्यालों को दूर रखने के लिए प्रयत्न करता है; अपनी आँख को काबू में रखता है, अपनी आँख पर संयम रखता है।

वह अपने कान से सुन्दर शब्द सुनता है···नासिका से सुगन्धि सूँघता है, जिह्वा से रस चखता है···शरीर से स्पर्श करता है···मन से सोचता है·····अपने मन को काबू में रखता है, अपने मन पर संयम रखता है।

भिक्षुओ, इसे संयम-प्रयत्न कहते हैं।

और भिक्षुओ, प्रहाण-प्रयत्न किसे कहते हैं?

एक भिक्षु प्रयत्न करता है, जोर लगाता है, मन को काबू में रखता है कि ऐसे अकुशल पापमय-ख्याल जो उसके मन में पैदा हो गए हैं, वह दूर हो जाएँ।

उसके मन में जो काम भोग की इच्छा उत्पन्न हुई है, जो क्रोध उत्पन्न हुआ है, जो हिंसक विचार उत्पन्न हुआ है, वह ऐसे सभी अकुशल पापमय विचारों को जगह नहीं देता, छोड़ देता है, नष्ट कर देता है, मिटा देता है।

म. २० भिक्षुओ, योग-अभ्यासी भिक्षु को समय समय पर पाँच बातों को मन में स्थान देना चाहिये:—

१—भिक्षुओ, (यदि) किसी भिक्षु को किसी बात पर विचार करने से, किसी चीज को मन में जगह देने से तृष्णा-द्वेष तथा मूढ़ता से भरे हुए अकुशल पापमय विचार पैदा हों, तो उस भिक्षु को चाहिये कि उस बात को छोड़ कर दूसरी शुभ-विचार पैदा करने वाली बात वा चीज को मन में स्थान दे।

२—अथवा उन पापमय विचारों के दुष्परिणाम को सोचे कि "यह (अवांछित) वितर्क अकुशल हैं, यह वितर्क सदोष हैं, यह वितर्क दुःख देने वाले हैं।"

३—अथवा उन वितर्कों को मन में जगह न दे।

४—अथवा उन वितर्कों का संस्कार-स्वरूप होना सोचे।

५—अथवा दाँतों पर दाँत रख कर, जिह्वा को तालु में लगा कर अपने

चित्त से चित्त का निग्रह करे, उसे दबाये, उसे संताप दे।

उसके ऐसा करने से, उस भिक्षु के तृष्णा, द्वेष तथा मूढ़ता से भरे हुए अकुशल पापमय-विचार नष्ट हो जाते हैं, अस्त हो जाते हैं। उनके नाश हो जाने से चित्त अपने आप ही स्थिर हो जाता है, शान्त हो जाता है, एकाग्र हो जाता है, समाधिस्थ हो जाता है।

भिक्षुओ, इसे प्रहाण-प्रयत्न कहते हैं।

और भिक्षुओ, भावना-प्रयत्न क्या है?

एक भिक्षु प्रयत्न करता है, जोर लगाता है, मन को काबू में रखता है कि जो कुशल कल्याण-मय बातें उसमें नहीं हैं, वे उसमें आ जायें। वह स्मृति (=निरन्तर जागरुकता), धर्म-विचय, वीर्य्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधी तथा उपेक्षा **बोधि के सात अंगों** का अभ्यास करता है, जो कि एकान्त-वास तथा वे-राग होने से उत्पन्न होते हैं, निरोध से सम्बन्धित हैं और उत्सर्ग की ओर ले जाने वाले हैं। अ. ४

भिक्षुओ, इसे भावना-प्रयत्न कहते हैं।

और भिक्षुओ, अनुरक्षण-प्रयत्न क्या है?

एक भिक्षु प्रयत्न करता है, जोर लगाता है, मन को काबू में रखता है कि जो अच्छी बातें उस (के चरित्र) में आ गई हैं वे नष्ट न हों, उत्तरोत्तर बढ़ें, विपुलता को प्राप्त हों।

वह **समाधि-निमित्तों** की रक्षा करता है। भिक्षुओ, इसे अनुरक्षण-प्रयत्न कहते हैं। म. ७

(वह सोचता है)—"चाहे मेरा मांस-रक्त सब सूख जाये और बाकी रह जायें केवल त्वक्, नसें और हड्डियाँ; जब तक उसे जो किसी भी मनुष्य के प्रयत्न से, शक्ति से, पराक्रम से प्राप्य है, प्राप्त नहीं कर लूँगा, तब तक चैन नहीं लूँगा।"

भिक्षुओ, इसे सम्यक्-प्रयत्न (=व्यायाम) कहते हैं।

(११)

सम्यक् स्मृति

८. २२ भिक्षुओ, सम्यक् स्मृति क्या है?

भिक्षुओ, एक भिक्षु काय (=शरीर) के प्रति जागरूक (=कायानुपश्यी) है। वह प्रयत्नशील, ज्ञानयुक्त, (=होश वाला) तथा लोक में जो लोभ और दौर्मनस्य है उसे हटाकर विहरता है; वेदनाओं के प्रति जागरूक... चित्त के प्रति जागरूक और धर्म (=मन के विषयों) के प्रति जागरूक, प्रयत्नवाला, ज्ञानयुक्त, होशवाला तथा लोक में जो लोभ और दौर्मनस्य है उसे हटा कर विहरता है।

भिक्षुओ, प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक तथा कष्ट के उपशमन के लिए, दुक्ख तथा दौर्मनस्य के नाश के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए, निर्वाण के साक्षात् करने के लिए यह चारों प्रकार का स्मृति-उपस्थान (=सतिपट्ठान) ही एक मात्र मार्ग है।

भिक्षुओ, भिक्षु कैसे काया में जागरूक (=कायानुपश्यी) हो विहरता है?—भिक्षुओ, भिक्षु अरण्य में, वृक्ष के नीचे, एकान्त-घर में, आसन मार कर, शरीर को सीधा कर, स्मृति को सामने कर बैठता है। वह जानता हुआ सांस लेता है, जानता हुआ सांस छोड़ता है। लम्बी सांस लेते हुए वह अनुभव करता है कि लम्बी सांस ले रहा हूँ। लम्बी सांस छोड़ते हुए अनुभव करता है कि लम्बी सांस छोड़ रहा हूँ। छोटी सांस लेते हुए अनुभव करता है कि छोटी सांस ले रहा हूँ। छोटी सांस छोड़ते हुए अनुभव करता है कि छोटी सांस छोड़ रहा हूँ। सारी काया को अनुभव करते हुए सांस लेना सीखता है। सारी काया को अनुभव करते हुए सांस

छोड़ना सीखता है। काया के संस्कार को शान्त करते हुए साँस लेना सीखता है, काया के संस्कार को शान्त करते हुए साँस छोड़ना सीखता है। इस प्रकार अपनी काया में कायानुपश्यी हो विहरता है। दूसरों की काया में कायानुपश्यी हो विहरता है। अपनी और दूसरों की काया में कायानुपश्यी हो विहरता है। काया में उत्पत्ति (-धर्म) को देखता विहरता है। काया में विनाश (-धर्म) को देखता विहरता है। काया में उत्पत्ति-विनाश को देखता विहरता है। 'काया है', करके, इसकी स्मृति, ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के अर्थ उपस्थित रहती है वह अनाश्रित हो विहरता है, लोक में किसी भी वस्तु को (मैं, मेरा करके) ग्रहण नहीं करता। भिक्षुओ, इस प्रकार भी भिक्षु काया में कायानुपश्यी हो विहार करता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु चलता हुआ जानता है कि चल रहा हूँ, खड़ा हुआ जानता है कि खड़ा हूँ, बैठा हुआ जानता है कि बैठा हूँ, लेटा हुआ जानता है कि लेटा हूँ। जिस जिस अवस्था में उसका शरीर होता है, उस उस अवस्था में उसे जानता है। "भिक्षु समझता है कि मेरी क्रियाओं के पीछे कोई करने वाला नहीं, कोई आत्मा नहीं; क्रिया-मात्र हैं। व्यवहार की सुविधा के लिए हम कहते हैं "मैं चलता हूँ, मैं खड़ा हूँ" इत्यादि।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु जानते हुए आता जाता है; जानते एहु देखता भालता है; जानते हुए सिकोड़ता-फैलाता है; जानते हुए संघाटी, पात्र-चीवर को धारण करता है; जानते हुए असन, पान, खादन, आस्वादन करता है; जानते हुए पाखाना-पेशाब करता है, जानते हुए चलता, खड़ा-रहता, बैठता, सोता, जागता, बोलता, चुप रहता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु पैर के तलवे से ऊपर, केश-मस्तक से नीचे त्वचा से घिरे हुए इस काया को नाना प्रकार की गन्दगी से पूर्ण देखता है

—इस काया में हैं—केश-रोम, नख, दांत, चमड़ी (=त्वक्), मांस, स्नायु, हड्डी (के भीतर) की मज्जा, वृक्क, कलेजा, यकृत, क्लोमक, तिल्ली, फुप्फुस, आंत, पतली आंत (=अन्त-गुण), उदरस्थ (=वस्तुयें), पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, वर (=मेद), आंसू, चर्बी (=वसा), लार, नासा-मल, जोड़ों में का तरल-पदार्थ, और मूत्र। जैसे भिक्षुओ, दोनों ओर मुंह वाली एक थैली हो और वह नाना प्रकार के अनाज शाली, धान (=व्रीही), मूंग, उड़द, तिल, तण्डुल, आदि से भरी हो, उसे आंख-वाला आदमी खोल कर देखे—यह शाली है, यह धान है, यह मूंग है, यह उड़द है, यह तिल है, यह तण्डुल है। इसी प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु पैर के तलवे से ऊपर, केश मस्तक के नीचे,त्वचा से घिरे हुए, इस काया को नाना प्रकार की गन्दगी से पूर्ण देखता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु इस काया को, (इसकी) स्थिति के अनुसार (इसकी) रचना के अनुसार देखता है। इस काया में हैं—पृथ्वी-महाभूत (=धातु) जल-महाभूत, अग्नि-महाभूत, वायु-महाभूत। जैसे कि भिक्षुओ, चतुर गो-घातक या गो-घातक का शागिर्द, गाय को मार कर, उसकी बोटी बोटी पृथक् पृथक् करके चौरस्ते पर बैठा हो। ऐसे ही भिक्षुओ, भिक्षु इस काया को (इसकी) स्थिति के अनुसार (इसकी) रचना के अनुसार देखता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु श्मशान में फेंके हुए एक दिन के मरे, दो दिन के मरे, तीन दिन के मरे, फूले, नीले पड़ गये, पीब भरे, (मृत-) शरीर को देखे। (और उससे) वह अपनी इसी काया का ख्याल करे—यह काया भी इसी स्वभाव वाली, ऐसे ही होने वाली, इससे न बच सकने वाली है।

इस प्रकार काया के भीतर कायानुपश्यी हो विहरता है। काया के बाहर कायानुपश्यी हो विहरता है। काया के अन्दर-बाहर कायानुपश्यी हो विहरता है। काया में उत्पत्ति (-धर्म) को देखता विहरता है। काया

में विनाश (=धर्म) को देखता विहरता है। 'काया है' करके इसकी स्मृति ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के अर्थ उपस्थित रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोक में किसी भी वस्तु को, (मैं मेरा करके) ग्रहण नहीं करता। भिक्षुओ, इस प्रकार भी भिक्षु काया में कायानुपश्यी हो विहार करता है।

भिक्षुओ, जिसने कायानुस्मृति का अभ्यास किया है, उसे बढ़ाया है, उस भिक्षु को दस लाभ होने चाहियें। कौन से दस? म० ११९

१—वह अरति-रति-सह (=उदासी के सामने डटा रहने वाला) होता है, उसे उदासी परास्त नहीं कर सकती, वह उत्पन्न उदासी को परास्त कर विहरता है।

२—वह भय-भैरव-सह होता है। उसे भय-भैरव परास्त नहीं कर सकता। वह उत्पन्न भय-भैरव को परास्त कर विहरता है।

३—शीत, उष्ण, भूख-प्यास, डंक मारने वाले जीव, मच्छर, हवा-धूप, रेंगने वाले जीवों के आघात; दुरुक्त, दुरागत वचनों, तथा दुख-दायी, तीव्र, कटु, प्रतिकूल, अरुचिकर, प्राण-हर शारीरिक पीड़ाओं को सह सकने वाला होता है।

४—सुखपूर्वक विहार करने के लिए उपयोगी चारों चैतसिक-ध्यानों को इसी जन्म में बिना कठिनाई के प्राप्त करता है।

५—वह अनेक प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त करता है।

६—वह अमानुष, विशुद्ध दिव्य-श्रोत्र से दोनों प्रकार के शब्द सुनता है। दिव्य (शब्दों) को भी, मानुष (शब्दों) को भी, दूर के शब्दों को भी, समीप के शब्दों को भी।

७—दूसरे सत्वों के, दूसरे व्यक्तियों के चित्त को चित्त से जान लेता है।

८—अनेक प्रकार के पूर्व-निवासों (=पूर्वजन्मों) को जान लेता है।

९—अमानुष, दिव्य, विशुद्ध चक्षु से मरते-उत्पन्न होते, अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त सत्वों को जानता है—सत्वों के कर्मानुसार सत्वों ी उत्पत्ति को जानता है।

१०—आश्रवों के क्षय से जो चित्त की आस्रव-रहित विमुक्ति है, प्रज्ञा-की विमुक्ति है, उसे इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है।

भिक्षुओ, भिक्षु वेदनाओं में वेदनानुपश्यी कैसे होता है?

दी. २२ भिक्षुओ, भिक्षु सुख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि सुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ। दुःख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि दुःख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ। अदुख-असुख वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि अदुख-असुख वेदना को अनुभव कर रहा हूँ। भोग-पदार्थ युक्त (= सामिप) सुख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ युक्त सुख-वेदना को अनुभव कर रहा हूँ। भोग-पदार्थ-रहित सुख वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ-रहित सुख-वेदना को अनुभव कर रहा हूँ। भोग-पदार्थ सहित दुख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ-सहित दुःख-वेदना को अनुभव कर रहा हूँ। भोग-पदार्थ रहित दुःख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ रहित दुःख-वेदना को अनुभव करता हूँ। भोग-पदार्थ-युक्त अदुख-असुख वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ युक्त अदुख-असुख वेदना को अनुभव करता हूँ। भोग-पदार्थ रहित अदुख-असुख वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ-रहित असुख-अदुख वेदना को अनुभव करता हूँ।

इस प्रकार अपने अन्दर की वेदनाओं में वेदनानुपश्यी हो विहरता है। बाहर की वेदनाओं में वेदनानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर की वेदनाओं में वेदनानुपश्यी हो विहरता है। वेदनाओं में उत्पत्ति (-धर्म) को देखता है। वेदनाओं में व्यय (-धर्म) को देखता है। वेदनाओं में समुदय-व्यय (-धर्म) को देखता है। 'वेदना है' करके इसकी स्मृति ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के लिए उपस्थित रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोक में किसी भी वस्तु को (मैं, मेरा करके) ग्रहण नहीं करता।

इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु वेदनाओं में वेदनानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु चित्त में चित्तानुपश्यी हो कैसे विहरता है ?

भिक्षुओ, भिक्षु स-राग चित्त को जानता है कि यह स-राग चित्त है। राग-रहित चित्त को जानता है कि यह राग-रहित है। स-द्वेष चित्त को जानता है कि यह स-द्वेष है। द्वेष-रहित चित्त को जानता है कि यह द्वेष-रहित है। स-मोह (=मूढ़ता) चित्त को जानता है कि यह स-मोह है। मूढ़ता-रहित चित्त को जानता है कि यह मूढ़ता-रहित है। स्थिर चित्त को जानता है कि यह स्थिर है, चंचल चित्त को जानता है कि यह चंचल है। महापरिमाण (=महद्गत)-चित्त को जानता है कि यह महद्गत चित्त है, अमहद्गत-चित्त को जानता है कि यह अ-महद्गत है। स-उत्तर चित्त को जानता है कि यह स-उत्तर है। अनुत्तर (=उत्तम) चित्त को जानता है कि यह अनुत्तर है। एकाग्र चित्त (=समाहित) को जानता है कि यह एकाग्र है। एकाग्रता-रहित चित्त को जानता है कि यह एकाग्रता-रहित है। विमुक्त चित्त को जानता है कि यह विमुक्त है। अ-विमुक्त चित्त को जानता है कि यह अ-विमुक्त है।

इस प्रकार भीतरी चित्त में चित्तानुपश्यी हो विहरता है। बाहरी चित्त में चित्तानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर चित्त में चित्तानुपश्यी हो विहरता है। चित्त में उत्पत्ति (=धर्म) को देखता है। चित्त में व्यय (=धर्म) को देखता है। चित्त में उत्पत्ति-व्यय (=धर्म) को देखता है। 'चित्त है' करके इसकी स्मृति ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के लिए उपस्थित रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोक में किसी भी वस्तु को (मैं, मेरा करके) ग्रहण नहीं करता।

इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु चित्त में चित्तानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु धर्मों (=मन के विषयों) में कैसे धर्मानुपश्यी विहरता है ?

भिक्षुओ, भिक्षु पांच नीवरणों (=बन्धनों) को देखता हुआ धर्मों में धर्मानुपश्यी होता है।

उसमें कामुकता (=कामच्छन्द) विद्यमान होने पर "कामुकता है" जानता है। उसमें कामुकता नहीं होने पर "कामुकता नहीं है" जानता है। कामुकता की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न कामुकता का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट हुई कामुकता फिर कैसे नहीं उत्पन्न होती है—यह जानता है।

उसमें क्रोध (=व्यापाद) विद्यमान होने पर "क्रोध है" जानता है। क्रोध नहीं होने पर 'क्रोध नहीं है'—जानता है। क्रोध की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न क्रोध का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट हुआ क्रोध फिर कैसे नहीं उत्पन्न होता है—यह जानता है।

उसमें आलस्य (=स्त्यान-मृद्ध) विद्यमान होने पर "आलस्य है" जानता है। उसमें आलस्य नहीं होने पर "आलस्य नहीं है" जानता है। आलस्य की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न आलस्य का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट हुआ आलस्य कैसे फिर नहीं उत्पन्न होता है—यह जानता है।

उसके भीतर उद्धतपन-पछतावा (औद्धत्य-कौकृत्य) विद्यमान रहने पर "उद्धतपन तथा पछतावा है" जानता है। उसके भीतर उद्धतपन तथा पछतावा नहीं होने पर उद्धतपन तथा पछतावा नही है जानता है। उद्धतपन तथा पछतावे की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न उद्धतपन तथा पछतावे का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट हुआ उद्धतपन तथा पछतावा फिर कैसे नहीं उत्पन्न होता है—यह जानता है।

उसके भीतर संशय (=विचिकित्सा) विद्यमान रहने पर "संशय है" जानता है। उसके भीतर संशय नहीं रहने पर 'संशय नहीं है' जानता है। संशय की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न संशय कैसे नष्ट

होता है—यह जानता है। नष्ट संशय फिर कैसे नहीं उत्पन्न होता है—यह जानता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु पाँच उपादान-स्कन्ध धर्मों में धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षु चिन्तन करता है—"यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का अस्त होना है; यह वेदना है, यह वेदना का समुदय है, यह वेदना का अस्त होना है; यह सञ्ज्ञा है, यह सञ्ज्ञा का समुदय है, यह सञ्ज्ञा का अस्त होना है; यह संस्कार है, यह संस्कारों का समुदय है, यह संस्कारों का अस्त होना है; यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है, यह विज्ञान का अस्त होना है।"

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु छः अन्दरनी-बाहरी आयतनों में धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु आँख को समझता है, रूप को समझता है और आँख तथा रूप के हेतु से जो संयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। संयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न संयोजन का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट संयोजन फिर कैसे नहीं उत्पन्न होता है—यह जानता है।

भिक्षुओ, भिक्षु श्रोत्र को समझता है, शब्द को समझता है और श्रोत्र तथा शब्द के हेतु से जो संयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। संयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न संयोजन का कैसे नाश होता है—यह समझता है। नष्ट संयोजन फिर कैसे नहीं उत्पन्न होता है—यह समझता है।

भिक्षुओ, भिक्षु घ्राण को समझता है, गन्ध को समझता है और घ्राण तथा गन्ध के हेतु से जो संयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। संयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न संयोजन का कैसे नाश होता है—यह समझता है। नष्ट संयोजन फिर कैसे नहीं उत्पन्न होता है—यह समझता है।

भिक्षुओ, भिक्षु जिह्वा को समझता है, रस को समझता है और जिह्वा तथा रस के हेतु से जो संयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। संयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न संयोजन का कैसे नाश होता है— यह समझता है। नष्ट संयोजन फिर कैसे उत्पन्न नहीं होता है—यह समझता है।

भिक्षुओ, भिक्षु काय को समझता है, स्पर्शतव्य को समझता है, और काय तथा स्पर्शतव्य के हेतु से जो संयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। संयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न संयोजन का कैसे नाश होता है—यह समझता है। नष्ट संयोजन फिर कैसे उत्पन्न नहीं होता है—यह समझता है।

भिक्षुओ, भिक्षु मन को समझता है, मन के विषयों (=धर्मों) को समझता है और मन तथा धर्मों के हेतु से जो संयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। संयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न संयोजन का कैसे नाश होता है—यह समझता है। नष्ट संयोजन फिर कैसे उत्पन्न नहीं होता—यह समझता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु सात बोधि-अङ्ग धर्मों में धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु स्मृति सम्बोधि-अङ्ग, धर्म-विचय सम्बोधि-अङ्ग, वीर्य्य-सम्बोधि-अङ्ग, प्रीति-सम्बोधि-अङ्ग, प्रश्रब्धि सम्बोधि-अङ्ग, तथा उपेक्षा सम्बोधि-अङ्ग,—इन सब के विद्यमान रहने पर 'विद्यमान हैं' जानता है, विद्यमान नहीं रहने पर 'विद्यमान नहीं हैं' जानता है। इन सब की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न सम्बोधि-अङ्गों की भावना कैसे पूरी होती है—यह जानता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु, चार आर्य-सत्य धर्मों में धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है'— इसे यथार्थ रूप से जानता है। 'यह

दु:ख-समुदय है'—इसे यथार्थ रूप से जानता है। 'यह दु:ख-निरोध है'—इसे यथार्थ रूप से जानता है। 'यह दु:ख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है'—इसे यथार्थ-रूप से जानता है। इस प्रकार भीतरी-धर्मो में धर्मानुपश्यी हो विहरता है। बाहरी-धर्मो में धर्मानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर धर्मों में धर्मानुपश्यी हो विहरता है। धर्मों में उत्पत्ति (-धर्म) को देखता है। धर्मो में वय (-धर्म) को देखता है। धर्मो में समुदय - वय धर्म को देखता है। 'धर्म है' करके इसकी स्मृति ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के लिए उपस्थित रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोक में किसी भी वस्तु को (मैं, मेरा करके) ग्रहण नहीं करता।

भिक्षुओ, जो कोई भिक्षु इन चार स्मृति-उपस्थानों की सात वर्ष तक भावना करे, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति अवश्य होगी—इसी जन्म में अर्हत्व (=अञ्ञा), उपादान-अवशिष्ट रहने पर अनागामी-भाव। भिक्षुओ, सात वर्ष की बात रहने दो..... छः वर्ष पाँच वर्ष... चार वर्ष... तीन वर्ष.... दो वर्ष.... वर्ष.... मास.... सप्ताह भर भी भावना करे, तो उसे दो फलों में से एक फल अवश्य प्राप्त होगा—इसी जन्म में अर्हत्व वा उपादान अवशिष्ट रहने पर अनागामी-भाव।

सम्यक् समाधि

म. ४४ भिक्षुओ, यह जो चित की एकाग्रता है—यही समाधि है। चारों स्मृति-उपस्थान हैं समाधि के निमित्त, और चारों सम्यक्-प्रयत्न हैं समाधि की सामग्री। इन्हीं (आठों) धर्मों के सेवन करने, भावना करने तथा बढ़ाने का नाम है समाधि-भावना।

म. २७ भिक्षुओ, भिक्षु इस आर्य-सदाचार से युक्त हो, इस आर्य-इन्द्रिय–संयम से युक्त हो, स्मृति और ज्ञान से भी युक्त हो, ऐसे एकान्त-स्थान में रहता है जैसे आरण्य, वृक्ष की छाया, पर्वत, कंदरा, गुफा, श्मशान, जंगल, खुले आकाश तथा पुवाल के ढेर पर। वह पिंड-पात से लौट भोजन कर चुकने पर पालथी मार शरीर को सीधा रख स्मृति को सामने कर बैठता है।

वह सांसारिक लोभों को छोड़ लोभ-रहित चित्त वाला हो विचरता है। चित्त से लोभ को दूर करता है। वह क्रोध को छोड़ क्रोध-रहित चित्तवाला हो, सभी प्राणियों पर दया करता हुआ विचरता है। चित्त से क्रोध को दूर करता है। वह आलस्य को छोड आलस्य से रहित हो, रोशन-दिमाग़ (=आलोकसञ्ञी), स्मृति तथा ज्ञान से युक्त विचरता है। वह चित्त से आलस्य को दूर करता है। वह उद्धतपने तथा पछतावे को छोड़ उद्धतता-रहित शांत चित्त हो विचरता है। चित्त से उद्धतता को दूर करता है। वह संशय को छोड़ संशय-रहित हो विचरता है। वह अच्छी अच्छी बातों (=कुशल धर्मों) के विषय में संदेह-रहित होता है। चित्त से सन्देह को दूर करता है।

वह चित्त के उपक्लेश, प्रज्ञा को दुर्बल करने वाले पाँच बन्धनों को छोड़,

काम-वितर्क से रहित हो, बुरे विचारों से रहित हो प्रथम-ध्यान को प्राप्त कर विचरता है; जिसमें वितर्क और विचार है, जो एकान्त-वास से उत्पन्न होता है, जिसमें प्रीति और सुख रहते हैं।

भिक्षुओ, प्रथम-ध्यान में पांच बातें नहीं रहती हैं और पांच रहती हैं। म. ४३ भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रथम-ध्यान की अवस्था में होता है, उस की कामुकता विनष्ट रहती है, क्रोध विनष्ट रहता है, आलस्य विनष्ट रहता है। उद्धतपन और पछतावा विनष्ट रहता है। संशय विनष्ट रहता है। वितर्क रहता है, विचार रहता है, प्रीति रहती है, सुख रहता है और रहती है चित्त की एकाग्रता।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु वितर्क और विचारों के उपशमन से अन्दर की म. २७ प्रसन्नता और एकाग्रता रूपी द्वितीय-ध्यान को प्राप्त होता है, जिसमें न वितर्क होते हैं, न विचार; जो समाधि से उत्पन्न होता है और जिसमें प्रीति तथा सुख रहते हैं।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु प्रीति से भी विरक्त हो उपेक्षावान् बन विचरता है। वह स्मृतिमान्, ज्ञानवान् होता है और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय-ध्यान को प्राप्त करता है, जिसे पंडित-जन 'उपेक्षावान्, स्मृतिवान्, सुखपूर्वक विहार करने वाला' कहते हैं।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु सुख और दुख—दोनों के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हुए रहने से (उत्पन्न) चतुर्थ-ध्यान को प्राप्त करता है, जिसमें न दुःख होता है, न सुख, और होती है (केवल) उपेक्षा तथा स्मृति की परिशुद्धि।

भिक्षुओ, भिक्षु प्रथम-ध्यान... द्वितीय-ध्यान.... तृतीय-ध्यान तथा अ. ९ चतुर्थ-ध्यान को प्राप्त कर विचरता है। वह रूप, वेदना, सञ्ज्ञा, संस्कार, विज्ञान—सभी धर्मों को अनित्य समझता है, दुःख समझता है, रोग समझता है, फोड़ा समझता है, शल्य समझता है, पाप समझता है, पीड़ा समझता है, पर समझता है, नष्ट होने वाला समझता है, शून्य समझता है,

और समझता है अनात्म। वह (अपने) मन को उन धर्मों (=विषयों) की ओर जाने से रोकता है। अपने मन को उन धर्मों की ओर जाने से रोक कर वह उस अमृत-तत्व की ओर ले जाता है जो कि "शान्त है, श्रेष्ठ है, सभी संस्कारों का शमन है, सभी चित्तमलों का त्याग है, तृष्णा का क्षय है, विराग-स्वरूप तथा निरोध-स्वरूप निर्वाण है।" वहाँ पहुँचने से उसके आश्रवों का क्षय हो जाता है।

और यदि आश्रव-क्षय नहीं भी होता, तो उसी धर्म-प्रेम के प्रताप से पहले पाँच वन्धनों का नाश कर अयोनिज देवयोनि में उत्पन्न (=औप-पातिक) होता है। वहीं, उसका निर्वाण होता है—फिर उस लोक से लौट कर संसार में नहीं आता।

भिक्षुओ, भिक्षु एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा, चौथी दिशा, ऊपर, नीचे, तिर्छे, हर जगह, हर प्रकार से, सारेके सारे लोक के प्रति, विपुल, महान्, प्रमाण-रहित, निर्वैर, निष्क्रोध मैत्री-चित्त वाला, करुणा-पूर्ण चित्त वाला, मुदिता-युक्त चित्त वाला और उपेक्षा-युक्त चित्त वाला हो विहरता है। वह सब रूप-संज्ञाओं को पार कर प्रतिघ-संज्ञाओं को अस्त कर, नानत्व-सञ्ञा को मन से निकाल 'आकाश अनंत है' करके **आकाशानन्त्यायतन** को प्राप्त हो विचरता है। 'आकाशानन्त्यायतन को पार कर 'विज्ञान अनंत है' करके **विज्ञानानन्त्यायतन** को प्राप्त हो विहरता है। विज्ञाणानन्त्यायतन को पार कर 'कुछ नहीं है' करके **आकिञ्चन्यायतन** को प्राप्त हो विहरता है। जो वेदना, सञ्ञा, संस्कार, तथा विज्ञान है, वह उन सभी धर्मों को अनित्य समझता है, दुःख समझता है, रोग समझता है, फोड़ा समझता है, शल्य समझता है, पाप समझता है, पीड़ा समझता है, पर समझता है, नष्ट होने वाला समझता है, शून्य समझता है और समझता है अनात्म। वह (अपने) मन को उन धर्मों की ओर जाने से रोकता है। अपने मन को उन धर्मों की ओर जाने से रोक कर वह उस अमृत-तत्व की ओर ले जाता है जो कि 'शान्त है, श्रेष्ठ है, सभी संस्कारों का शमन है, सभी

चित्तमलों का त्याग है, तृष्णा का क्षय है, विराग स्वरूप तथा निरोध स्वरूप निर्वाण है।" वहाँ पहुँचने से उनके आस्रवों का क्षय हो जाता है।

और यदि आस्रव-क्षय नहीं भी होता, तो उसी धर्म-प्रेम के प्रताप से पहले के पांच बन्धनों का नाश कर अयोनिज देवयोनि में उत्पन्न होता है। वहीं उसका निर्वाण होता है—फिर उस लोक से लौट कर संसार में नहीं आता।

सभी 'आकिञ्चन्यायतनों' को पार कर 'नैव संज्ञा-ना-संज्ञा-आयतन'-को प्राप्त हो विहरता है। सभी 'नैवसंज्ञा न असंज्ञा-आयतन'को पार कर **'संज्ञा की अनुभूति के निरोध'** को प्राप्त कर विहरता है।

भिक्षुओ, जब (भिक्षु) भव या विभव किसी के लिए भी न प्रयत्न करता है, न इच्छा करता है, तो वह लोक में (मैं, मेरा करके) कुछ भी ग्रहण नहीं करता। जब कुछ ग्रहण नहीं करता तो उसको परिताप भी नहीं होता। जब परिताप नहीं होता तो वह अपने ही निर्वाण पाता है। उसको ऐसा होता है कि जन्म-(मरण) जाता रहा, ब्रह्मचर्यवास (का उद्देश पूरा) हो गया, जो करना था कर लिया, अब यहां के लिए शेष कुछ नहीं रहा।

वह सुख-वेदना को अनुभव करता है, दुःख वेदना को अनुभव करता, अदुख-असुख वेदना को अनुभव करता है। वह उस वेदना को अनित्य समझता है, अनासक्त रहकर ग्रहण करता है, उसका अभिनंदन नहीं करता; वह उसका अनुभव अलग रह कर ही करता है। वह समझता है कि शरीर छूटने पर, मरने के बाद, जीवन के परे अनासक्त रहकर अनुभव की गई यह वेदनायें यहीं ठंडी पड़ जायेंगी।

जिस प्रकार भिक्षुओ, तेल के रहने से, बत्ती के रहने से दीपक जलता है और उस तेल तथा बत्ती के समाप्त हो जाने तथा दूसरी (नई तेल-बत्ती) के न रहने से दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार भिक्षुओ, शरीर छूटने पर, मरने के बाद, जीवन के परे, अनासक्त रहकर अनुभव की गई यह वेदनायें यहीं ठंडी पड़ जाती हैं।

म. १४० भिक्षुओ, यही परम् आर्य-प्रज्ञा है—यह जो सभी दुःखों के क्षय का ज्ञान। उसकी यह विमुक्ति सत्य में स्थित होती है, अचल होती है।

भिक्षुओ, यही परम् आर्य-सत्य है यह जो अक्षय-निर्वाण।

भिक्षुओ, यही आर्य-त्याग है, यह जो सभी उपाधियों का त्याग।

भिक्षुओ, यही परम् आर्य-उपशमन है, यह जो राग-द्वेष-मोह का उपशमन।

"मैं हूँ"—यह एक मानता है, "मैं यह हूँ"—यह एक मानता है, "मैं होऊँगा"—यह एक मानता है, "मैं नहीं होऊँगा"—यह एक मानता है; "मैं रूपी होऊँगा"—यह एक मानता है, "मैं अरूपी होऊँगा"—यह एक मानता है, "मैं संज्ञी होऊँगा"—यह एक मानता है, "मैं असंज्ञी होऊँगा"—यह एक मानता है, "मैं न संज्ञी-नासंज्ञी" होऊँगा—यह एक मानता है—भिक्षुओ, मानता रोग है, मानता फोड़ा है, मानता शल्य है। सभी मान्यताओं के उपशमन होने पर कहा जाता है—"मुनि शान्त है"।

भिक्षुओ, जो शान्त-मुनि है, न उसका जन्म है, न जीवन है, न मरण है, न चञ्चलता है, न इच्छा है; क्योंकि भिक्षुओ, उसे वह (हेतु) ही नहीं है जिससे पैदा होना हो। जब पैदा ही होना नहीं तो जीयेगा क्या? जब जीएगा नहीं, तो चञ्चल क्या होगा? जब चंचल नहीं होगा तो, इच्छा क्या करेगा?

म. २९ भिक्षुओ, इस श्रेष्ठ-जीवन का उद्देश्य न तो लाभ-सत्कार की प्राप्ति, न प्रशंसा की प्राप्ति, न सदाचार के नियमों का पालन करना, न समाधि लाभ और न ज्ञानी बनना ही। भिक्षुओ, जो चित्त की अचल विमुक्ति है वही इस श्रेष्ठ-जीवन का असली उद्देश्य है, वही सार है, उसी पर खातना है।

म. ५१ भिक्षुओ, पूर्व में जितने भी अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध हुए उन्होंने भिक्षु-संघ को इसी आदर्श की ओर अच्छी तरह लगाया, जिसकी ओर इस समय मैं ने अच्छी तरह लगाया है।

और भिक्षुओ, भविष्यत् में जितने भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होंगे—वे भी भिक्षु-संघ को इसी आदर्श की ओर लगायेंगे, जिसकी ओर इस समय मैं ने अच्छी तरह लगाया है।

शिष्यों के हितैषी शास्ता को अपने शिष्यों पर दया करके जो करना चाहिये, वह मैं ने कर दिया। भिक्षुओ, यह (सामने) वृक्षों की छाया है। यह एकान्त-घर है। भिक्षुओ, ध्यान लगाओ, प्रमाद मत करो। देखना, पीछे मत पछताना। यही हमारी अनुशासना है। म. ७

परिशिष्ट

पृ० १. अर्हत्—जीवन्मुक्त।

तथागत—बुद्ध के तथागत, लोकनाथ, सुगत, महामुनि, लोकगुरु, धर्मस्वामी आदि अनेक नाम हैं। तथागत=तथा आगतः=वैसे आये जैसे और बुद्ध।

मृगदाव—(=मृगों का जंगल) वर्तमान सारनाथ (बनारस)।

श्रमण—साधु।

मार—शैतान=कामदेव।

आर्य-सत्य—(=श्रेष्ठ-सत्य)।

बारह प्रकार से—प्रत्येक आर्य-सत्य के बारे में (१) यह आर्यसत्य है। (२) यह आर्यसत्य जानना चाहिये। (३) यह आर्यसत्य जान लिया गया है—इस प्रकार तेहरा ज्ञान।

पृ० ३. पाँच उपादान स्कन्ध—(देखो पृष्ठ ८)

आयतन—इन्द्रियाँ।

पृ० ४. रूप उपादान स्कन्ध (दे० पृ० ५)

वेदना उपादान स्कन्ध (इन्द्रियों और विषयों का संयोग होने पर किसी भी प्रकार की अनुभूति (Sensation)

संज्ञा उपादान स्कन्ध—वेदना के अनन्तर किसी भी अस्तित्व का नामकरण। (Perception).

संस्कार उपादान स्कन्ध—चारों स्कन्धों से अवशिष्ट चैतसिकक्रियाएँ।

विज्ञान उपादान स्कन्ध—विशिष्ट-ज्ञान (Consciousness)

पृ० ५. पृथ्वी-धातु—'पृथ्वी' ग्रहण न करके पृथ्वी-पन ग्रहण करना चाहिये (inertia)।

जल धातु—जल नहीं जलत्व, जिसमें जोड़ने की शक्ति है (Cohesion)।
अग्नि धातु—आग नहीं अग्नित्व; या अग्निपन (Radiation)।
वायु-धातु—वायु नहीं वायुपन (Vibration)।

पृ० ६. **उनका संयोग**—किसी भी वस्तु के ज्ञान के लिए वह वस्तु चाहिये, उस वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने वाली इन्द्रिय चाहिये और चित्त चाहिये। इनमें से किसी एक के भी न रहने से ज्ञान नहीं हो सकता। चित्र के ज्ञान के लिए चित्र होना ही चाहिये; आँख होनी ही चाहिये; लेकिन उनके साथ चित्त भी होना चाहिये।

पृ० ७. **बिना हेतु के विज्ञान**—प्रतीत्य-समुत्पाद बुद्ध-धर्म का विशिष्ट सिद्धान्त है, जिसके अनुसार सभी उपादान-स्कन्ध सहेतुक हैं। विज्ञान की उत्पत्ति भी सहेतुक है।

विज्ञान—'विज्ञान' शब्द यहाँ दो अर्थों में है साधारण-अर्थ में सारी चित्त-क्रिया के लिए और विशेष अर्थ में, वेदना, संज्ञा, संस्कार आदि से रहित चित्त-क्रिया के लिए।

संस्कार—यहाँ संस्कार शब्द से कायिक-संस्कार और मनो-संस्कार, दोनों ग्राह्य हैं।

पृ० ११. **काम-तृष्णा**—इन्द्रिय-जनित सुख की तृष्णा।

भव-तृष्णा—व्यक्तिगत जीवन स्थायी रूप से बना रहे देखने की तृष्णा। जिस आदमी को "आत्मा" के अस्तित्व में, उसके नित्यत्व में विश्वास होता है, वही इस प्रकार की तृष्णा का शिकार होता है।

विभव-तृष्णा—इसी जन्म में अधिक से अधिक 'मज़ा' लेने की तृष्णा। जिस आदमी का यह मिथ्या-मत हो कि जन्म से लेकर मरने तक ही मेरा अस्तित्व है, और जन्म से पूर्व तथा मृत्यु के पश्चात् मेरे जीवन का किसी भी अस्तित्व से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं, वही इस विभव-तृष्णा का शिकार होता है। विभव-तृष्णा के वशीभूत हो जाने पर या तो वह एक दम निराशावाद के गढ़े में

जा गिरता है या फिर सदाचार को बिल्कुल तिलाञ्जलि दे 'परम स्वतन्त्र' हो विचरता है।

पृ० १३. आँख से रूप देखता हैं—वास्तव में आँख तो केवल एक साधन है। चक्षु-विज्ञान द्वारा आँख की देखने की शक्ति को साधन बना देखने की क्रिया होती है।

पृ० १७. निर्वाण—इसी शरीर में राग-द्वेष आदि चित्त-मलों का नष्ट होना क्लेश-निर्वाण और क्लेश-रहित अर्हत् की मृत्यु होने पर भविष्य में उसके जन्म की सम्भावना के नष्ट होने का नाम स्कन्ध-निर्वाण है इस प्रकार निर्वाण के दो भेद किये जाते हैं।

पृ० १८. आयतन—अस्तित्व।

पृ० १९. सम्यक्-दृष्टि—यथार्थ-ज्ञान=यथार्थ-समझ। यथार्थ-ज्ञान के बिना कोई भी सत्कार्य्य नहीं हो सकता। इसीलिए अष्टांगिक मार्ग में सम्यक्-दृष्टि को प्रथम स्थान मिला है। विस्तार के लिए देखो पृ० २१

सम्यक् संकल्प—यथार्थ-ज्ञान के अविरोधी संकल्प। प्रत्येक सदविचार में आर्य अष्टांगिक-मार्ग के कम से कम चार अंग अवश्य रहते हैं—(१) सम्यक् संकल्प, (२) सम्यक् व्यायाम, (३), सम्यक् स्मृति, (४) सम्यक् समाधि।

सम्यक् कर्मान्त—दुष्कर्मों से बचना।

सम्यक् व्यायाम—ग्रहण की हुई बुरी आदतों को छोड़ने, न ग्रहण की हुई बुरी आदतों को न ग्रहण करने, न ग्रहण की हुई अच्छी आदतों को ग्रहण करने और ग्रहण की हुई अच्छी आदतों को जारी रखने में जो मानसिक प्रयत्न करना पड़ता है, यही सम्यक् व्यायाम है।

सम्यक् स्मृति—स्मृति का अर्थ प्रायः याददाश्त=स्मरण-शक्ति लिया जाता है। लेकिन यहाँ स्मृति का अर्थ है जागरूकता। (Pre-

sence of mind) छोटे से छोटे और बड़े से बड़े प्रत्येक कार्य्य को करते समय यह ज्ञान रहे कि मैं अमुक कार्य्य कर रहा हूँ।

सम्यक् समाधि—शुभ-कर्मों के करने में चित्त की एकाग्रता।

पृ० २०. ब्रह्मचर्य्य=श्रेष्ठ जीवन

पृ० २१. दुराचरण—प्रत्येक वह कृत्य जिसका हमारे जीवन पर बुरा असर पड़ता है और जिसका हमें दुःखमय परिणाम भोगना पड़ता है, दुराचरण कहलाता है।

जीव-हिंसा—जान बूझ कर किसी भी प्राणी की हिंसा करना—चाहे वह किसी उद्देश्य से हो—जीव-हिंसा है।

मिथ्या-दृष्टि—दान-पुण्य सब व्यर्थ है, न अच्छे कर्म का अच्छा फल होता है, न बुरे, का बुरा, आदि विचार।

मन के कृत्य—चेतना=मन का कर्म ही वास्तव में कर्म है। यही शारीरिक कृत्य के रूप में प्रगट होता है; यही वाणी के कृत्य के। शारीरिक और वाणी के कृत्यों के रूप में न प्रगट होने की अवस्था में हम उसे मन के कृत्य (=मनोकम्म) कहते हैं।

पृ० २२. मोह—लोभ और द्वेष कभी बिना मोह=मूढ़ता के नहीं होता।

सम्यक्-दृष्टि—(१) लोकोत्तर-सम्यक्-दृष्टि और लौकिय-सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-दृष्टि के यह दो भेद हैं। इनमें से प्रथम सम्यक्-दृष्टि केवल श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत् व्यक्तियों को होती है। जिसकी मुक्ति-प्राप्ति निश्चित है, उसे श्रोतापन्न; जिसे संसार में (केवल) एक जन्म और धारण करना है, उसे सकृदागामी; जिसे और एक भी जन्म धारण नहीं करना है, वह अनागामी तथा जो जीवन्मुक्त हो गया है, उसे अर्हत् कहते हैं।

पृ० २३. पृथग्जन—श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, तथा अर्हत्—ये सब आर्य-जन कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे सब आदमी पृथग्जन।

सत्कायदृष्टि—नाम को सत् समझने की दृष्टि। इसके दो रूप हो सकते हैं (१) भव-दृष्टि=उच्छेद दृष्टि, यह विश्वास कि जन्म से मृत्यु पर्यन्त का जीवन ही केवल अस्तित्व है, और मृत्यु होने पर उसका उच्छेद हो जाएगा (२) विभव-दृष्टि—यह विश्वास कि शरीर से बिल्कुल स्वतन्त्र "आत्मा" नाम की सत्ता है, जो मरने के अनन्तर भी बनी रहती है।

शील-व्रत-परामर्श—धार्मिक क्रिया-कलाप (व्रत आदि) को मोक्ष का उपाय मानना — पृ० २४.

यह आत्म......रहेगा—श्रीमद्भगवद्गीता की यही शिक्षा है—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२२४॥

यह आत्मा न काटी जा सकती है, न जलाई जा सकती है, न गलाई जा सकती है, न सुखाई जा सकती है। यह नित्य, सर्व व्यापक स्थिर अचल और सनातन है ॥२–२४॥

तीनों बन्धन—दस संयोजन (=बन्धन) मनुष्य को जन्म मरण के चक्र से बांधे रहते हैं। वे हैं—(१) सत्काय-दृष्टि, (२) विचिकित्सा, (३) शील-व्रत परामर्श, (४) काम-राग, (५) व्यापाद (=क्रोध), (६) रूप-राग (=रूप लोक में उत्पत्ति की इच्छा), (७) अरूप-राग (=अरूप लोक में उत्पत्ति की इच्छा) (८) मान (=अभिमान), (९) उद्धतता (=एकाग्रता का अभाव), (१०) अविद्या। — पृ० २५.

धर्म—(१) अस्तित्व (२) मनेन्द्रिय के विषय — पृ० २६.

रात को....और ही—वास्तव में पुद्गल=व्यक्ति के अस्तित्व का समय बहुत ही थोड़ा है, केवल एक चित्त क्षण भर। ज्यों ही चित्त-क्षण निरुद्ध होता है, व्यक्तित्व भी उसके साथ निरुद्ध होता है। "भविष्य का व्यक्तित्व भविष्य में होगा, न वर्तमान में है, न अतीत — पृ० २६.

में था। वर्तमान का व्यक्तित्व वर्तमान में है, न भविष्य में होगा, न अतीत में था। अतीत का व्यक्तित्व अतीत में था, न वर्तमान में है, न भविष्य में होगा।" (विशुद्धिमार्ग)

पृ० २६. प्रतीत्य-समुत्पाद—प्रत्ययों से उत्पत्ति का नियम। बौद्ध धर्म कसी "एक कारण' से सृष्टि की उत्पत्ति नहीं मानता। प्रत्येक "एक कारण" के भीतर उसे "कारण सामग्री" दिखाई देती है।

पृ० ३०. तथागत.....फँसते नहीं—यथार्थ दृष्टि से व्यक्ति क्या है ? शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं का एक संसरण-मात्र। व्यक्ति= मैं या बुद्ध भी कहीं है ही नहीं

पृ० ३२. नैष्क्रम्य-संकल्प—काम-भोग के जीवन को त्याग, काम-भोग वासना से रहित जीवन व्यतीत करने का संकल्प।

अव्यापाद संकल्प—ऐसा संकल्प जिसमें क्रोध का लेश न हो।

अविंहिसा संकल्प—ऐसा संकल्प जिसमें निर्दयता का लेश न हो।

पृ० ३६. बोधि के सात अंग—बुद्धत्व-प्राप्ति के यह सात अंग न केवल आर्य-व्यक्तियों (=श्रोतापन्न, सकृदागामी आदि) में ही पाये जाते हैं, बल्कि किसी हद तक साधारण पृथग्जनों में भी। देखो पृ० ४६

पृ० ३७. समाधि-निमित्त—योग-अभ्यासी भिक्षु के योग-अभ्यास के फल-स्वरूप उत्पन्न हुआ आकार-विशेप (=object)

पृ० ३८. सम्यक्-स्मृति—शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं के प्रति निरन्तर बनी रहने वाली जागरूकता।

पृ० ३८. काया—रूप-काया (material existence)

पृ० ३९. काया—श्वास-प्रश्वास का ग्रहण।

काया है—'वह समझता है कि यह केवल 'काया है', यह कोई व्यक्ति नहीं, स्त्री नहीं, पुरुप नहीं, आत्मा नहीं, आत्मा का नहीं" (अट्ठकथा)

जिस जिस....जानता है—योगाभ्यासी समझता है कि यहाँ जाने वाला, खड़ा होने वाला, बैठने वाला व्यक्ति-विशेष कोई नहीं है; यह जो हम कहते हैं—"मैं जाता हूँ", "मैं खड़ा होता हूँ", "मैं बैठता हूँ" आदि यह केवल कहने का एक तरीका है।

संघाटी—भिक्षुओं के तीन चीवरों में से एक चीवर।

पृ० ४०. गो-घातक—पुराने समय में गो-घात वा गो-घातक की उपमा एक साधारण उपमा थी।

पृ० ४१. चारों चैतसिक ध्यान—प्रथम-ध्यान, द्वितीय-ध्यान, तृतीय-ध्यान, तथा चतुर्थ ध्यान। देखो पृ० ४६।

ऋद्धियाँ—असाधारण शक्तियाँ। ऋद्धियों को असम्भव न मान कर, एक वैज्ञानिक की दृष्टि से उनका तजुर्बा करने में तो विशेष हर्ज नहीं, लेकिन अन्धी-श्रद्धा के साथ ऋद्धियों के पीछे हैरान होना सचमुच नादानी है। 'ऋद्धियाँ' सम्भव हैं ही, ऐसा व्यक्तिगत अनुभव से कहने वाले कितने हैं; यदि सम्भव हों भी तो भी उन की विशेष उपयोगिता क्या है?

पृ० ४३. वेदनाओं में वेदनानुपश्यी—वेदना के तीन प्रकार हैं—(१) सुखा-वेदना=अनुकूल अनुभूति; दुखा-वेदना=प्रतिकूल अनूभूति; न सुखा न दुखा वेदना=ऐसी अनुभूति जिसके बारे में यह कहा न जा सके कि यह अनूकूल वेदना है वा प्रतिकूल।

चित्त—चित्त का मतलब है विज्ञान-स्कन्ध।

भीतरी चित्त—अपने भीतर का चित्त।

धर्मों—यहाँ धर्मो से मतलब है संज्ञा-स्कन्ध और संस्कार-स्कन्ध से।

सम्यक्-स्मृति में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान—यह पाँचों स्कन्ध ध्यान के विषय हैं।

पृ० ४४. पाँच नीवरणों—(१) कामच्छन्द, (२) व्यापाद, (३) स्त्यान मृद्ध, (४) औद्धत्य-कौकृत्य (५) विचिकित्सा—यही पाँच नीवरण हैं।

कामच्छन्द—अनागामी होने की ही अवस्था में इसका सर्वथा नाश होता है।

औद्धत्य—अर्हत् होने की ही अवस्था में मानसिक चंचलता (=औद्धत्य) का सर्वथा नाश होता है।

विचिकित्सा—श्रोतापन्न होने की अवस्था में ही संशयों का सर्वथा नाश हो जाता है।

पृ० ४५. संयोजन—चक्षु और रूप के हेतु से आदमी के लिए बंधन (=संयोजन) पैदा होता है।

पृ० ४८. समाधि—समाधि के दो भेद किये जाते हैं—(१) उपचार-समाधि (समाधि के समीप की अवस्था), (२) अर्पणा-समाधि (=सम्पूर्ण समाधि)। यह आवश्यक नहीं कि निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाले मनुष्य को चारों ध्यान की भी प्राप्ति हो ही, और न ही केवल उपचार-समाधि या अपर्णा समाधि के बल पर कोई श्रोतापन्न आदि हो सकता है। श्रोतापन्न आदि तो होता है केवल विपश्यना द्वारा—जिसका मतलब है संसार को अनित्य-स्वरूप, दुःख-स्वरूप तथा अनात्म-स्वरूप देख सकने की शक्ति। लेकिन हाँ यह विपश्यना केवल उपचार-समाधि की अवस्था में प्राप्त होती है। इसलिए यदि किसी ने ध्यान-प्राप्त कर लिए हैं, तो भी उसे विपश्यना के लिए उपचार-समाधि की अवस्था में आना होगा।

जो बिना किसी ध्यान की प्राप्ति के क्लेशों को नष्ट करता है, उसे सुख विपश्यक कहते हैं, जो ध्यानों के द्वारा प्राप्त अन्दरूनी शान्ति (=शमथ) की सहायता से क्लेशों को नष्ट करता है, उसे समथ-यानक कहते हैं।

पृ० ५०. आकाशानन्त्यायतन—आकाश (=Space) के अनंत होने का भाव।

विज्ञानानन्त्यायतन—विज्ञान (=Consciousness) के अनंत होने का भाव।

आकिञ्चन्यायतन—'कुछ (सार) नहीं है' का भाव।

पृ० ५१. संज्ञा की अनुभूति के निरोध—यह संज्ञा-हीनता अथवा किसी ध्यान की अवस्था सात दिन तक बराबर बनी रह सकती है।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग की
अनुपम पुस्तकें

१—ईश्वरीय-बोध—परमहंस स्वामी रामकृष्णजी के उपदेश भारत में ही नहीं, संसार भर में प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के उपदेशों का यह संग्रह है। श्रीरामकृष्णजी ने ऐसी मनोरंजक और सरल, सब की समझ में आने लायक बातों में प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान कराया है कि कुछ कहते नहीं बनता। प्रत्येक उपदेश पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है मानो कोई कहानी पढ़ रहे हैं। परिवर्द्धित संस्करण का मूल्य सिर्फ ॥।)

२—सफलता की कुञ्जी—अमेरिका, जापान आदि देशों में वेदान्त का डंका पीटने वाले तथा भारत-माता का मुख उज्ज्वल करने वाले स्वामी रामतीर्थ को सभी जानते हैं। यह पुस्तक उन्हीं स्वामी जी के Secret of Success नामक अपूर्व निबन्ध का अनुवाद है। मूल्य ।)

३—मनुष्य जीवन की उपयोगिता—मनुष्य जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सकता है? इसकी उत्तम रीति आप जानना चाहते हैं तो एक बार इसे पढ़ जाइये। कितने सरल उपायों से जीवन पूर्ण सुखमय हो जाता है, यह आपको इसी पुस्तक से मालूम होगा। यह मूल पुस्तक तिब्बत के प्राचीन पुस्तकालय में थी, जहाँ के एक चीनी ने इसका अनुवाद चीनी भाषा में किया। आज दिन योरप की प्रत्येक भाषा में इसके हज़ारों संस्करण हो चुके हैं। डेढ़ सौ पेज की पुस्तक का मूल्य ॥=)

४—भारत के दशरत्न—यह जीवनियों का संग्रह है। इसमें भीष्म पितामह, श्रीकृष्ण, पृथ्वीराज, महाराणा प्रतापसिंह, समर्थ गुरु रामदास, श्रीशिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के जीवन-चरित्र बड़ी खूबी के साथ लिखे गये हैं। सचित्र का मूल्य ॥)

५—ब्रह्मचर्य ही जीवन है—इसको पढ़कर सच्चरित्र पुरुष तो सदैव के लिये वीर्यनाश से बचता ही है, किन्तु पापात्मा भी निःसंशय

पुण्यात्मा बन जाता है। व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है। दुर्बल तथा दुरात्मा भी साधु हो जाता है। जो पुरुष अपने को औषधियों का दास बनाकर भी जीवन लाभ नहीं कर सका है, उसे इस पुस्तक में बताये सरल नियमों का पालन कर अनन्त जीवन प्राप्त करना चाहिये। कोई भी ऐसा गृहस्थ या भारतपुत्र न होना चाहिये जिसके पास ऐसी उपयोगी पुस्तक की एक प्रति न हो। दसवें संस्करण का मूल्य ॥)

६—वीर राजपूत—अप्राप्य मू० १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें—भारतवर्ष में औषधालयों और औषधियों की कमी नहीं, फिर भी यहाँ के मनुष्यों की आयु अन्य देशों की अपेक्षा सबसे कम क्यों है? औषधियों का विशेष प्रचार न होते हुये भी हमारे पूर्वजों की आयु सैकड़ों वर्ष कैसे होती थी? एक मात्र कारण यही है कि हमारे खाने पीने, उठने बैठने के व्यवहारों में बर्तने योग्य कुछ ऐसे नियम हैं जिन्हें हम भूल गये हैं "हम सौ वर्ष कैसे जीवें?" को पढ़ कर उसके अनुसार चलने से मनुष्य सुखों का भोग करता हुआ १०० वर्ष तक जीवित रह सकता है। मूल्य १)

८—वैज्ञानिक कहानियाँ—महात्मा टालस्टाय लिखित वैज्ञानिक कहानियाँ, विज्ञान की शिक्षा देनेवाली तथा मनोरंजक पुस्तक मूल्य ।)

९—वीरों की सच्ची कहानियाँ—यदि आपको अपने प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान है यदि आप वीर और बहादुर बनना चाहते हैं, तो इसे पढ़िये। इसमें अपने पुरुषाओं की सच्ची वीरता-पूर्ण यश गाथायें पढ़ कर आपका हृदय फड़क उठेगा, नसों में वीर रस प्रवाहित होने लगेगा, पुरुषाओं के गौरव का रक्त उबलने लगेगा। मूल्य केवल ||=)

१०—आहुतियाँ—यह एक बिलकुल नये प्रकार की नयी पुस्तक है। देश और धर्म पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते हँसते मृत्यु का आवाहन करते हैं? उनकी आत्मायें क्यों इतनी प्रबल हो जाती हैं? वे मर कर भी कैसे जीवन का पाठ पढ़ते हैं? इत्यादि दिल फड़काने वाली कहानियाँ पढ़नी हों तो "आहुतियाँ" आज ही मँगा लीजिये। हिन्दी

में ऐसा संग्रह कभी नहीं निकला था। एक एक कहानी वीर रस में सराबोर है। मूल्य केवल ।॥)

११—जगमगाते हीरे—प्रत्येक आर्य सन्तान के पढ़ने लायक यह एक ही नयी पुस्तक है। इसमें राजा राममोहन राय से लेकर आज तक के भारत प्रसिद्ध महापुरुषों की संक्षिप्त जीवन दी गयी हैं। एक बार इस सचित्र पुस्तक को आप खुद पढ़िये और अपने स्त्री-बच्चों को पढ़ाइये। मूल्य केवल १)

१२—पढ़ो और हँसो—विषय जानने के लिये पुस्तक का नाम ही काफी है। एक एक लाइन पढ़िये और लोट-पोट होते जाइये। आप पुस्तक अलग अकेले में पढ़ेंगे, पर दूसरे लोग समझेंगे कि आज किससे यह कहकहा हो रहा है। पुस्तक की तारीफ यह है कि पूरी मनोरंजक होते हुए भी अश्लीलता का कहीं नाम नहीं। यदि शिक्षाप्रद मनोरंजक पुस्तक पढ़नी है तो इसे पढ़िये। मूल्य ॥)

१३—मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता—मनुष्य के शरीर के अंगों और उनके कार्य इस पुस्तक में बतलाये गये हैं। इसके पढ़ने से आपको पता चलेगा कि हम अपनी असावधानी, तथा अपनी अनियमित रहन सहन से शरीर के अंगों को किस प्रकार विकृत कर डालते हैं। मूल्य ।=)

१४—एकान्तवास—अप्राप्य मू० ।॥)

१५—पृथ्वी की अन्वेषण की कथायें—अप्राप्य १)

१६—फल उनके गुण तथा उपयोग—पुस्तक का विषय नाम ही से प्रकट है। अभी तक इस विषय पर हिन्दी में क्या भारत की किसी भाषा में भी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। यह बात निर्विवाद है कि फलाहार सब से उत्तम और निर्दोष आहार है। महात्मा गांधी फल पर ही रहते हैं। भारतीय ऋषि फलाहार ही से हज़ारों वर्ष जीवित रहते थे, रोग उनके पास नहीं फटकता था। अस्तु आप अपने तन मन और आत्मा को नीरोग रखना चाहें तो यह पुस्तक अवश्य पढ़ें। मूल्य केवल १।)

१७—स्वास्थ्य और व्यायाम—यह अपने ढंग की हिन्दी में एक ही पुस्तक है। आज दिन व्यायाम के अभाव से नवयुवकों के स्वास्थ्य और

शरीर का किस प्रकार ह्रास हो रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। लेखक ने अपने निज के अनुभव तथा संसार-प्रसिद्ध पहलवान सैंडो, मूलर तथा प्रो० राममूर्ति के अनुभवों के आधार पर लिखा है। इसमें लड़कों और स्त्रियों के उपयुक्त भी व्यायाम बतलाये गये हैं। व्यायाम की विधि बताने के साथ ही साथ चित्र भी दिये गये हैं जिससे व्यायाम करने में सहूलियत हो जाती है। मूल्य अजिल्द का १।॥) तथा सजिल्द का २)

१८—धर्मपथ—प्रस्तुत पुस्तक में महात्मा गाँधी के ईश्वर, धर्म तथा नीति सम्बन्धी लेखों का संग्रह किया गया है जिन्हें उन्होंने समय समय पर लिखे हैं। यह सभी जानते हैं कि महात्मा गाँधी केवल राजनीतिक नेता ही नहीं, वरन् वर्तमान युग के धार्मिक सुधारक तथा युगप्रवर्तक हैं। ऐसे महात्मा के धार्मिक विचारों से परिचित होना प्रत्येक धर्मावलम्बी का परम कर्त्तव्य है। मू० ॥।)

१९—स्वास्थ्य और जलचिकित्सा—जलचिकित्सा के लाभों को सब लोगों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। इस विषय पर जनसाधारण के लिये कोई उपयोगी पुस्तक न थी। जो दो एक पुस्तकें हैं भी उनका मूल्य इतना अधिक है और वे इतनी क्लिष्ट भाषा में लिखी गई हैं कि सर्वसाधारण का उनसे लाभ उठाना एक तरह से कठिन ही है। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक सब के लिये बहुत उपयोगी है। मू० १॥)

२०—बौद्ध कहानियाँ—महात्मा बुद्ध का जीवन और उपदेश कितने महत्वपूर्ण, पवित्र और चरित्र-निर्माण में सहायक हैं, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस पुस्तक में उन्हीं महात्मा के जीवन के उपदेश कहानियों के रूप में दिये गये गए हैं। उनकी घटनायें सच्ची हैं। प्रत्येक कहानी रोचक और सुन्दर ढंग से लिखी गई है। पुस्तक विद्यार्थियों तथा नवयुवकों को विशेष उपयोगी है। सचित्र पुस्तक का मू० १) है।

२१—भाग्य-निर्माण—आज बहुत से नवयुवक सब तरह से समर्थ और योग्य होने पर भी अकर्मण्य हो भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं। कोई उद्यम या परिश्रम का कार्य नहीं करते। फल-स्वरूप वे अपने लिये तथा घरवालों के लिये बोझ हो जाते हैं। यह पुस्तक विशेषकर ऐसे

नवयुवकों को लक्ष्य करके लिखी गई है। इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ के पढ़ने से नवयुवकों में उत्साह, स्फूर्ति तथा नवजीवन प्राप्त होगा। इस पुस्तक के लेखक हैं हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान तथा जयपुर हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज ठाकुर कल्याणसिंह जी बी० ए०। सुन्दर जिल्द से युक्त पुस्तक का मूल्य १॥) है।

२२—वेदान्त धर्म—इसमें देश-विदेश में वेदान्त का झंडा फहराने वाले स्वामी विवेकानन्द के भारतवर्ष में वेदान्त पर दिये हुये भाषणों का संग्रह है। ये वे ही व्याख्यान हैं, जिनके प्रत्येक शब्द में जादू का सा असर है। पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है, मानो उनका प्रत्यक्ष भाषण सुन रहे हों। स्वामी जी के भाषण कितने प्रभावशाली, जोशीले और सामयिक हैं, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। आध्यात्मिक विषयों की रुचि रखने वालों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। मू० १॥)

२३—पौराणिक महापुरुष—आजकल हमारे बच्चे स्कूलों में विदेशी महापुरुष के ही चरित पढ़ते हैं। परिणाम यह होता है कि उन पर विदेशी आदर्शों की छाप पड़ जाती है, वह अपने भारतीय संस्कृति और धर्म से दूर होजाते हैं। इस पुस्तक में हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीच आदि महापुरुषों की जीवन कथायें संक्षेप में दी गई हैं। जिन्होंने सत्य, दया धर्म के लिये अपनी आहुति दे दी थी। मू० ॥)

२४—मेरी तिब्बत यात्रा—इसके लेखक भारतीय पुरातत्व के अन्वेषक त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन हैं। लेखक ने अभी हाल ही में तिब्बत की यात्रा की थी। इस पुस्तक में तिब्बत के अनोखे रीति रिवाज, वहाँ की रहन-सहन तथा धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों पर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक से नेपाल के विषय में भी काफ़ी बातें मालूम होती हैं। पुस्तक पढ़ने में उपन्यास का सा मज़ा आता है। पुस्तक पत्रों के रूप में है। मू० १॥)

२५—दूध ही अमृत है—दूध की उपयोगिता को कौन प्राणी स्वीकार न करेगा। जब बच्चा जन्म लेता है, दूध ही द्वारा उसकी जीवन रक्षा होती है। ऐसे जीवन रक्षक दूध के सम्बन्ध में अंगरेजी आदि विदेशी

भाषाओं में सैकड़ों पुस्तकें हैं, परन्तु हिन्दी में कोई ऐसी पुस्तक न थी, जिसमें दूध के पोषक तत्वों, इसके पीने से लाभ तथा इससे क्या २ वस्तुयें तैयार हो सकती हैं, आदि बातों का वर्णन हो। इसी कमी को दूर करने के लिये इस पुस्तक की रचना की गई है। अगर आप दूध के वास्तविक गुणों को जानना चाहते हों, तो इसे अवश्य पढ़ें। मू० १॥)

२६—अहिंसाव्रत—ले० महात्मा गांधी हैं जो अहिंसा को परम धर्म मानते हैं। उनका सारा सिद्धांत इसी पर अवलम्बित है। अगर आप अहिंसा के वास्तविक मर्म को जानकर अपना जीवन पवित्र और शुद्ध बनाना चाहते हैं तो इस पुस्तक को पढ़ें। इस पुस्तक में उन सब लेखों का संग्रह किया गया है, जिन्हें महात्मा जी ने समय २ पर लिख कर पाठकों की शंकाओं, उनकी उलझनों को दूर किया है। मू० ।॥)

२७—पुण्यस्मृतियाँ—इसके लेखक भी महात्मा गांधी हैं। इस ग्रन्थ में महात्मा जी ने महात्मा टालस्टाय, लोकमान्य तिलक, महात्मा गोखले, सुकरात, देशबन्धु दास, लाला लाजपत राय आदि देशी तथा विदेशी महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। इस ग्रन्थरत्न के सम्बन्ध में अधिक लिखना व्यर्थ है, जब स्वयं महात्मा जी की पावन लेखनी से महापुरुषों की पावनगाथा लिखी गई है। आप भी इसे पढ़कर अपनी आत्मा को उच्च और पवित्र बनाइये। मू० १)

साहित्य सरोजमाला की पुस्तकें:—

१—पतिता की साधना—इस उपन्यास का कथानक बिल्कुल नये ढंग का है जो अभी तक हिन्दी के किसी उपन्यास में नहीं मिल सकता। इसकी अत्यन्त रोचकता और अद्भुत रचना-प्रणाली देकर पाठकों का कुतूहल उत्तरोत्तर इतना बढ़ जाता है कि इसे समाप्त किये बिना किसी काम में जी लगना तो दूर, खाना-पीना तक दुर्लभ हो जाता है। मू० २)

२—अवध की नवाबी—यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें लखनऊ के घोर विलासिता में मग्न नवाब की लास्यलीला, उनका प्रजा-पीड़न का रोमांचकारी वर्णन है। उस समय कोई सुव्यवस्थित शासन न

होने से देश भर में, ठग डाकुओं का किस प्रकार दौर-दौरा था, नवाब के कर्मचारी किस प्रकार बहू-बेटियों की इज्जत बर्बाद करते थे, प्रजा का सर्वस्व अपहरण कर उन्हें दर-दर का भिखारी बना देते थे, इसे पढ़कर पत्थर का हृदय भी पिघल जायगा। आपको स्वर्ग और नर्क का दृश्य साथ ही देखना हो तो इस उपन्यास को अवश्य ही पढ़ें। सुन्दर नयनाभिराम चित्र से युक्त पुस्तक का मू० २)

३—मछलीरानी—मनुष्य में जब कभी जीवन-रस की प्यास भड़कती है, तब वह कैसा अन्धा हो जाता है, कामना की अग्नि में जली-भुनी नारी भी अवसर आने पर अपना कलेजा किस तरह ठंडा करती है, जीवन के कोमल मधुर मिलन कितने प्राण-प्रद होते हैं, आदर्श नारी के हृदय में कितना प्यार, कैसा दर्प और कैसी दृढ़ न्याय-बुद्धि होती है और अन्त तक वह अपने आराध्य के साथ-साथ अपने जीवन का कैसे उपसर्ग करती है ये सब बातें इस उपन्यास में ऐसी जीवित भाषा, सुन्दर दृश्यों तथा अद्भुत घटनाओं के झकोरों में इतनी मनोहर शैली से बताई गयी हैं कि पाठक को पढ़ते-पढ़ते चकित कर डालती हैं। पृष्ठ संख्या लगभग तीन सौ, तिरंगा कवर, मू० २)

स्त्रियोपयोगी दो अनुपम पुस्तकें:—

१—स्त्री और सौन्दर्य—यौवन और सौन्दर्य स्त्रियों के लिए परमात्मा की अनुपम देन है। परन्तु स्त्रियाँ अपनी असावधानी तथा अज्ञानता से २०-२२ वर्ष तक पहुँचते पहुँचते इससे हाथ धो बैठती हैं और जीवन भर शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगती रहती हैं। प्रस्तुत पुस्तक सभी स्त्रियों के लिये बड़े काम की है चाहे वह युवावस्था में प्रवेश कर रही हों अथवा अपनी असावधानी से जिन्होंने यौवन को नष्ट कर डाला हो। इस पुस्तक में सौन्दर्य और स्वास्थ्य रक्षा के लिये ऐसे सुगम साधन तथा सरल व्यायाम बतलाये गये हैं जिनके नियमित रूप से बर्तने से ५० वर्ष की अवस्था तक भी स्त्रियाँ सुन्दरी और स्वस्थ बनी रह सकती हैं। मू० ३)

२—पाकविज्ञान—इसकी लेखिका ज्योतिर्मयी ठाकुर हैं। लेखिका

ने इसमें स्त्रियों के लिये विविध प्रकार के व्यंजनों की सरल और सुबोध विधि लिखी है। अगर आप अपनी बहू-बेटी तथा बहन को सद्गृहिणी बनाना चाहते हैं तो उनको इसकी एक प्रति खरीद कर अवश्य दीजिये। मू० ३)

साहित्य सुमनमाला की पुस्तकें—

१—मदिरा—हिन्दी के उदीयमान लेखक पं० तेजनारायण काक 'क्रांति' की अद्भुत लेखनी द्वारा लिखा गया यह सुन्दर गद्य काव्य है। प्रत्येक लाइन पढ़ते समय पद्य का सा आनन्द मिलता है। यदि आप सरस साहित्य के प्रेमी हैं, तो इसे अवश्य पढ़िये। मू० १) है।

२—कवितावली रामायण—कवि सम्राट गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना से कौन परिचित नहीं है। परीक्षार्थियों के लाभार्थ इसके कठिन शब्दों के अर्थ, पद्यों का सरलार्थ तथा पद्यों के मुख्य अलंकार भी बतलाये गये हैं विस्तृत भूमिका भी दी गई है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन पर पूरा प्रकाश डालते हुए कवितावली की निष्पक्ष आलोचना की गई है। भूमिका लेखक हैं प्रसिद्ध विद्वान पं० उदयनारायण त्रिपाठी मू० १।।)

३—भग्नावशेष—इसके लेखक प्रसिद्ध नाटककार 'कुमारहृदय' हैं जिनके नाटकों को हिन्दी जगत अच्छी तरह अपना चुका है। यह नाटक आपके पूर्व लिखित नाटकों से कहीं सुन्दर है। इसमें वीर रस और करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है। इसके पढ़ने से भारत के प्राचीन गौरव की झलक आँखों के सामने स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। मूल्य ॥=)

४—गुप्तजी की काव्य-धारा—ले० श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०—आधुनिक हिन्दी-साहित्य में बाबू मैथिलीशरण गुप्त का एक विशेष स्थान है। लगभग तीस वर्षों तक विविध काव्य-पुस्तकों की रचना कर के गुप्तजी ने हिन्दी-संसार को वह अमूल्य निधि प्रदान की है, जिस पर समस्त हिन्दी-भाषियों को उचित गर्व है। 'गुप्तजी की काव्य-धारा' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ में गुप्तजी के प्रायः सम्पूर्ण साहित्यिक कृतियों का एक सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मू० २।)

पता—साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइन्स, आगरा।